साक्षात्कार

डॉ. विकास दवे
सम्पादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

अक्टूबर, 2020
अंक : 484

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-462003

फ़ोन : 0755 - 2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email : sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।
web : http://mpsahityaacademy.com पर भी पढ़ सकते हैं।

वार्षिक सहयोग राशि

व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए : ₹ 250

संस्थाओं के लिए : ₹ 300

आजीवन : ₹ 3,000

यह अंक : ₹ 25 (रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त)

समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

आवरण : अमरजीत कुमार

व्यंग्य चित्र : देवेन्द्र शर्मा, इंदौर

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय // 05

बातचीत

वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामनिवास 'मानव' से // 07

आलेख

राजेन्द्र परदेसी : युगानुभूति के चितेरे मैथिलीशरण गुप्त // 17

कृष्ण कुमार यादव 'कनक' : डॉ. यायावर का गीतेतर काव्य : एक अनुशीलन // 23

अरुण कुमार शर्मा : अष्टछाप : भक्तिकाल का स्वर्ण युग // 29

डॉ. दादूराम शर्मा : चातक // 32

डॉ. आर.बी.भण्डारकर : बुन्देलखण्ड के विवाह-लोकगीतों में जीवन सौंदर्य // 38

प्रो. राजेश लाल मेहरा : निज भाषा उन्नति अहे...//45

शंकर लाल माहेश्वरी : सामाजिक समरसता के संवर्धन में हिन्दी भाषा की भूमिका // 47

विपिन बिहारी पाठक/डॉ. पूजा धामिजा : संघ-गीत एवं सांस्कृतिक भावबोध // 51

स्मृति शेष : संस्मरण

कुँअर बेचैन : हज़ारों खुशबुएँ दुनिया में हैं // 55

कविताएँ/गीत/गजल

शैवाल सत्यार्थी : ढीठ बादल मचल गया है // 59

अमित कुमार खरे : पावस के दोहे // 61

डॉ. दशरथ मसानिया : हिन्दी चालीसा // 64

डॉ. संध्या शुक्ल 'मृदुल' : भारत की आन-बान-शान है हिंदी // 67

डॉ. रमेश कटारिया पारस : पिता जी // 68

रश्मि शर्मा : खुद का आकाश // 70

सतपाल 'स्नेही' : गीत // 73

शेफाली शर्मा : मृत्यु // 75

शिव नारायण जोशी : शहीद मरते नहीं बिस्मिल // 78

विशाल शुक्ल : माँ // 80
दिलीप 'विद्यानन्दन' : हिन्दी तो महतारी है // 82
डॉ. ऋचा सत्यार्थी : मुझे तुमसे कुछ नहीं कहना // 84
राजेन्द्र उपाध्याय : गिलहरी // 87

व्यंग्य

रमेश मनोहरा : सम्मान की भूख // 90

कहानी

रमाकान्त ताम्रकार : गाँव बुला रहा है // 92
रामबरन शर्मा : रामलीला // 97
अभिषेक लाडगे : उपहार // 100
पुरुषोत्तम गौतम : कन्यादान // 107

लघुकथा

मीरा जैन : पेड़ का जवाब // 115
प्रो. जगदीश खरे : गुरु दक्षिणा // 116

समीक्षा

कैलाशचन्द्र पंत : कोरोना केंद्रित विश्व और भारत // 118

चिट्ठी // 120

संपादकीय

शब्द की चेतना का हरण करते वैदेशिक पर्याय

शब्द ब्रह्म की साधना करने वाले रचनाकार सामान्यतया शब्द के अर्थ और शब्द की गरिमा, शुचिता और मर्यादा से परिचित होते हैं किंतु कई बार दुर्भाग्य से विदेशी भाषाओं से आयातित शब्दों का प्रयोग करते समय हम सब इस दिशा में थोड़े लापरवाह हो जाते हैं। कई बार शब्दों का पर्याय बड़े सहज ढंग से उपयोग करते समय हम इस बात की चिंता बिल्कुल नहीं कर पाते की विदेशी भाषाओं में उस शब्द के पर्याय होते ही नहीं और यदि होते भी हैं तो उनके अर्थ में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अभाव होता है। मुझे स्मरण आता है कि एक वरेण्य विद्वान ने एक बड़ा सहज उदाहरण देते हुए भाषा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की चर्चा की थी जिसका उल्लेख मैं भी अनेक अवसरों पर अपने उद्‌बोधनों में करता रहा। उदाहरण बड़ा सटीक भी था और सहज ग्राह्य भी। उन्होंने कहा कि यदि हम किसी ब्रिटेन के व्यक्ति से यह कहें कि वह 'राधिके तूने बंसरी चुराई' इस पंक्ति का अनुवाद अपनी भाषा में करें तो स्वाभाविक रूप से वे विद्वान कहेंगे 'मिस राधा यू आर स्टोलन माय फ्लूट' और यदि उनसे इसका भावार्थ पूछा जाए तो वे जो भाव ग्रहण करेंगे वह इस प्रकार का होगा कि कोई राधा नाम की लड़की है जिसने एक सस्ती सी बाँस की बनी हुई बाँसुरी की चोरी कर ली है। किंतु यही पंक्ति यदि भारत के मन को समझने वाले किसी सामान्य से भारतीय से कह दी जाए तो उसकी आँखों के सामने संपूर्ण बृजमंडल, बरसाना, वृंदावन और महारास सब कुछ घूम उठेगा और वह एकदम से आनंद विभोर होकर दोनों हाथ उठाकर कहेगा- 'राधे रानी सरकार की जय हो'।

वास्तव में अनुवाद करना यह एक टेढ़ा काम तो है किंतु जब हम अनुवाद नहीं कर रहे होते हैं तब भी विदेशों से आयातित शब्द हमें मूल भाव तक नहीं पहुँचने देते। 'धर्म' शब्द के संदर्भ में हम अनेक वर्षों से इस बात को रेखांकित करते आ रहे हैं कि 'रिलीजन', 'मजहब' और 'पंथ' शब्द कभी भी 'धर्म' के पर्याय नहीं हो सकते। अब तो ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में भी धर्म और पंथ को भिन्न-भिन्न परिभाषित कर दिया गया है। यह स्पष्ट कर दिया गया है कि 'धर्म' का अर्थ किसी एक व्यक्ति, किसी एक पुस्तक अथवा किसी एक मत को मानने का सिद्धांत नहीं है अपितु धर्म संपूर्ण मानव जाति के द्वारा स्वीकार्य एक ऐसा जीवन मूल्य है जो किसी भी पूजा पद्धति से संबंध नहीं रखता। उदाहरण के लिए सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, परोपकार, सहयोग यह सभी भारतीय मनीषा में धर्म कहे गए हैं। संभवत: दुनिया के किसी भी पंथ अथवा मजहब को मानने वाला व्यक्ति इन्हें नकारना नहीं चाहेगा। अनेक बार तो हमें यह भी भ्रांति रहती है कि भारतीय संविधान हमें धर्मनिरपेक्ष होना सिखाता है अथवा धर्मनिरपेक्ष होने का आग्रह करता है। दुर्भाग्य से भारत के लोगों ने आज तक संविधान को संभवत: ठीक से देखा और पढ़ा ही नहीं क्योंकि संविधान के 42वें संशोधन के समय भारत की संवैधानिक आत्मा में धर्मनिरपेक्ष शब्द के प्रवेश का प्रयास किया गया था किंतु उसी समय भारतीय मनीषा से परिचित कांग्रेस के चिंतक और विधि विशेषज्ञ आदरणीय लक्ष्मीमल सिंघवी ने अपने हाथों से अपनी ही कलम से धर्म शब्द को काटकर उस अभिलेख में पंथ शब्द अंकित कर दिया था, जिसे तत्कालीन भारतीय नेतृत्व ने समझ लेने के बाद अत्यंत विनम्रता से स्वीकार भी कर लिया था। संविधान के इस मौलिक परिवर्तन की ओर आज तक किसी का भी ध्यान

आकर्षित नहीं हुआ। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम सब संविधान में प्रयुक्त मूल शब्द पंथनिरपेक्षता को ही अंगीकार करें। धर्मनिरपेक्ष होकर कोई भी राष्ट्र कभी चरित्रवान नहीं हो सकता।

हममें तो इतनी भी हिम्मत नहीं है कि हम कभी सर्वोच्च न्यायालय के प्रतीक चिह्न को देखकर यह समझ सकें कि वह भी अपनी मंशा को उसमें प्रयुक्त ध्येय वाक्य से प्रकट कर रहा है और वह ध्येयवाक्य है- 'यतो धर्मस्ततो जय'। जीवन मूल्यों को अंगीकार करने वाला राष्ट्र कभी भी धर्मनिरपेक्ष स्वरूप ग्रहण नहीं कर सकेगा इसलिए अनुवाद की चर्चा करते हुए, शब्द ब्रह्म की महत्ता की चर्चा करते हुए क्या हम सब मिलकर एक बार इस बात को ठीक से समझने का प्रयास करेंगे कि भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्ष नहीं पंथनिरपेक्षता का ही आव्हान करता है।

साहित्य का सृजन करते समय भी शब्दों का प्रयोग कई बार भ्रम उत्पन्न करता है। प्रख्यात दर्शन शास्त्री श्री रामेश्वर मिश्र पंकज जी सदैव इस बात को रेखांकित करते हैं कि हम जब 'वामपंथी' शब्द का प्रयोग करते हैं तो यह कहीं न कहीं भारतीय तंत्र-मंत्र और साधना के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले शब्द 'वाममार्गी' जैसा लगने लगता है। वाममार्गी शब्द अत्यंत पवित्र शब्द है और वह साधना के एक विशिष्ट मार्ग की ओर इंगित करता है इसलिए इस प्रकार के शब्द प्रयोग करने से कहीं भारतीय दर्शन से जुड़े वाममार्ग शब्द की महिमा का हनन तो नहीं हो रहा इस बात की भी चिंता हम सबको करनी चाहिए। इसी तरह 'स्त्री विमर्श' 'पुरुष मानसिकता' जैसे शब्दों का प्रयोग भी भारतीय साहित्य में अंग्रेजी साहित्य से आयात करके प्रारंभ हुआ है। 'स्त्री सशक्तिकरण' और 'स्त्री स्वातंत्र्य' जैसे शब्द भी वास्तव में यूरोप के इतिहास में चर्च के द्वारा दिए गए आदेशों के कारण और अपनी प्राचीन मान्यताओं के चलते स्त्री के शोषण और पंथ द्वारा दिए गए निर्देशों को तोड़कर उन बंधनों से बाहर आती 'यूरोपीय वुमन' के संघर्ष से पैदा हुए शब्द थे।

विगत दिनों श्री सुद्युम्न आचार्य जी के निवास पर भरहुत स्तूप के पुनर्निर्मित शैल चित्रों को देखते हुए यही सोच रहा था कि भारतीय स्त्री न तो कभी परतंत्र रही और न ही कभी शोषित। विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद से लेकर आज तक भारतीय स्त्री अपनी संपूर्ण शुचिता के साथ रचना प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण हिस्सा रही है। यही भारतीय स्त्री पुरातात्विक साक्ष्यों में प्रतिमाओं के रूप में कभी घुड़सवारी करते, कभी रथ चलाते, युद्ध करते तो कभी मदमस्त हाथी पर बैठकर अंकुश से उसे अपने वश में करती नजर आती है। श्रीमती कुसुमलता केडिया जी इस संदर्भ में अत्यंत मुखर होकर आग्रह करती हैं कि भारतीय साहित्य से अब उन सभी शब्दों को बाहर कर देने की आवश्यकता है जो शब्द यूरोपीय साहित्य, संस्कृति और मानसिक विकृतियों से पैदा हुए। ये विकृत शब्द अब भारतीय साहित्य को भी विकृत करने लगे हैं। यही कारण है कि 'स्त्री स्वातंत्र्य' के प्रश्नों से जोड़कर इन दिनों भारतीय समाज में 'कॉमन टॉयलेट' जैसी विद्रूप माँगें उठना स्त्री विमर्श का स्वर कहा जाने लगा है।

अनुवाद और शब्द प्रयोग विषय पर चर्चा करते हुए आइए हम सब भी इन प्रश्नों पर विवेक पूर्ण विचार करें। वैदेशिक शब्दावलियों से प्राप्त संस्कृति से भारतीय भाषाओं को ही नहीं अपितु भारतीय सांस्कृतिक चेतना को भी सुरक्षित रखने के यत्न प्रारंभ करें।

सदैव सा

विकास दवे

सम्पादक

अपनी पत्रिका के शीर्षक के अनुरूप भारत भर के वरिष्ठ रचनाकारों से संवाद स्थापित करते हुए साक्षात्कार लेकर उनकी साहित्य यात्रा और रचना कर्म से अन्य रचनाकारों को परिचित करवाना यह इस स्तम्भ का मुख्य हेतु रहेगा। यूँ तो 'साक्षात्कार' पत्रिका अपने नाम के अनुरूप इस तरह के साक्षात्कारों का पहले भी प्रकाशन करती रही है किंतु इसमें एक प्रयोग प्रारंभ किया है। विगत दिनों भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता के संदर्भ में एक पुस्तक पढ़ते हुए श्रद्धेय माखनलाल चतुर्वेदी जी और धर्मवीर भारती जी के संबंध में एक आलेख पढ़ते हुए यह ध्यान में आया था कि कोई भी साहित्यकार पत्रिका का संपादक बनते ही अपने आप को एक अलग पाले में खड़ा कर लेता है और रचनाकारों को दूसरे पाले में खड़ा कर देता है। यदि संपादक और रचनाधर्मियों के बीच सीधा संवाद स्थापित करने की सुचारू व्यवस्था बन जाए तो स्वाभाविक रूप से वह साहित्यिक पत्रिका साहित्यकार पाठकों के लिए भी अत्यंत आत्मीय हो जाती है। बस इसी बात को ध्यान में रखकर यह सोचा है कि पत्रिका में संपादकीय का आकार भले थोड़ा छोटा रहे किंतु मैं स्वयं चर्चा करके वरिष्ठ रचनाकारों के साक्षात्कार लूँ और उन्हें आप सबके समक्ष रखूँ। इस बहाने मेरा तो प्रशिक्षण होगा ही आप सब भी इन रचनाकारों के जीवनानुभवों से बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे। इसी शृंखला में प्रस्तुत है यह साक्षात्कार।-सम्पादक

डॉ. रामनिवास 'मानव' से विकास दवे की बातचीत

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. रामनिवास 'मानव' हिन्दी के एक बहुआयामी रचनाकार हैं। जीवन के महत्त्वपूर्ण पाँच दशक साहित्य-साधन को समर्पित कर चुके डॉ. 'मानव' अपनी विशिष्ट रचनाधर्मिता के बल पर, एक पुष्ट पहचान के साथ, हिन्दी-संसार में प्रतिष्ठित हैं। 'राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक-पुरुष' तथा 'हरियाणवी साहित्य के पुरोधा' माने जाने वाले डॉ. 'मानव' ने एम.ए. (हिन्दी), पी-एच.डी., डी.लिट्. तक सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त की है, वहीं अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार, सम्मान तथा 'साहित्य शिरोमणि', 'साहित्य महोपाध्याय', 'विद्यासागर' 'हिन्दी भाषा-भूषण' आदि मानद उपाधियाँ इन्हें प्राप्त हो चुकी हैं। देश के अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा इनकी अनेक रचनाओं तथा शोध-प्रबन्धों को अपने पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है, इनकी विविध रचनाएँ देश-विदेश की अनेक प्रमुख भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं, विभिन्न भाषाओं में अनूदित इनकी दस कृतियां भी प्रकाशित हो चुकी हैं। यही नहीं, डॉ. 'मानव' के व्यक्तित्व और कृतित्व पर व्यापक शोधकार्य सम्पन्न हो चुका है, जो इनके साहित्यिक अवदान के महत्त्व और वैशिष्ट्य को उजागर करता है। यहाँ प्रस्तुत है डॉ. विकास दवे द्वारा लिया गया डॉ. 'मानव' का संक्षिप्त साक्षात्कार।

डॉ. दवे : अब आप अपने नियमित लेखन की अर्द्धशती पूर्ण कर चुके हैं, आपकी साहित्यिक यात्रा के प्रथम चरण पर दृष्टिपात करना उचित होगा। हम जानना चाहेंगे कि आपने लेखन की शुरुआत कब की तथा लेखन की प्रेरणा आपको किससे मिली।

डॉ. 'मानव' : मैंने लिखना कब प्रारम्भ किया तथा मेरी सर्वप्रथम रचना कौन-सी थी, इस

सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कह पाना तो मेरे लिए सम्भव नहीं हैं, लेकिन मेरे लेखन की शुरुआत कविता से हुई, यह स्पष्ट है। आरम्भ में मैंने कुछ भजन और गीत लिखे थे, जिन्हें बाद में स्वयं ही नष्ट कर दिया। अब मैं, 6-7 वर्ष की अवस्था में रचित अपने निम्नलिखित पद से, अपनी साहित्यिक यात्रा का शुभारम्भ मानता हूँ-

मैं माया-जाल में फँसा रे।
सुनकर माया का मृदंग हुआ कैसा नशा रे।
अब छूटना चाहता हूँ, पर छूट न पाता हूँ।
छूटने की चाह में मैं और उलझ जाता हूँ।
अब मात्र भरोसा तेरा, प्रभो, तू ही बचा रे।
जीवन-मरीचिका में है बस बाहर हरियाली।
लेकिन भीतर-भीतर से पूर्णतया है खाली।
लेता निज उत्पीड़न में व्याकुल विश्व मज़ा रे।।

लेखन की प्रेरणा मुझे अपने पिता, पंडित मातादीन से मिली। मेरे पिताजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वह स्वतन्त्रता-सेनानी, समाज-सेवी और भजनोपदेशक होने के साथ-साथ एक आशुकवि भी थे। उनके पास क्षेत्र के प्रमुख भजनियों, सत्संगियों और साधु-सन्तों का अक्सर आना होता रहता था। देर रात तक भजनों और कविताओं का दौर चलता। तब मैं बहुत छोटा था, लेकिन फिर भी, अपने पिता के साथ, ऐसी महफ़िलों अथवा गोष्ठियों में उपस्थित रहता था और सभी रचनाओं को ध्यान से सुनता था। उसका मेरे बालमन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन दिनों हमारा परिवार गाँव से दूर, अपने 'फार्म हाउस' में रहता था। वहाँ प्रकृति के उन्मुक्त साहचर्य, पक्षियों के कलरव तथा मौसम और प्रकृति के बदलते रंग-रूपों ने भी मेरे सुकोमल मन को प्रभावित किया, जिससे मेरे मन-मानस में कविता के अंकुर फूटना स्वाभाविक था।

डॉ. दवे : प्रकाशन की शुरुआत कब हुई? प्रकाशित होने वाली प्रथम रचना और प्रथम कृति कौन-सी थी?

डॉ. 'मानव' : मेरी सर्वप्रथम प्रकाशित होने वाली रचना 'घटा' नामक कविता थी, जो 15 अगस्त, सन् 1972 को हिसार (हरि.) से प्रकाशित होने वाले 'हरियाणा-सन्देश' (साप्ताहिक) के स्वाधीनता के स्वर्ण जयन्ती-विशेषांक में प्रकाशित हुई थी। मेरी प्रकाशित होने वाली प्रथम पुस्तक 'धारा-पथ' (कविता-संग्रह) थी, जो सन् 1976 में, आपातकाल के दौरान प्रकाशित हुई थी। संग्रह में आपातकाल-विरोधी कुछ कविताएँ होने के कारण जिला-प्रशासन, महेन्द्रगढ़ ने इसके प्रकाशन पर रोक लगा दी थी, फिर यह हरियाणा के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री बनारसीदास गुप्ता के हस्तक्षेत्र के बाद ही प्रकाशित हो पाया।

डॉ. दवे : अब अपने साहित्य के विषय में कुछ बताइये। आपने अभी तक कितना और क्या-क्या लिखा है?

डॉ. 'मानव' : अब तक मेरी विभिन्न विधाओं की कुल पचपन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं,

जिनमें पन्द्रह काव्यकृतियाँ, आठ बालगीत-संग्रह, चार लघुकथा-संग्रह, चार शोध-समीक्षात्मक ग्रन्थ तथा दस सम्पादित कृतियाँ सम्मिलित हैं। इनमें से दो कृतियों के तीन-तीन तथा पाँच कृतियों के दो-दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। मेरे प्रारम्भिक चार बालगीत-संग्रह अब एक ही जिल्द में 'छोटे-छोटे इन्द्रधनुष' शीर्षक से उपलब्ध हैं। पंजाबी, मराठी, भोजपुरी, उड़िया, नेपाली, संस्कृत, अंग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओं में अनूदित दस कृतियाँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं। यहीं मैं यह भी बताना चाहूँगा कि मेरे व्यक्तित्व और कृतित्व पर केन्द्रित तीन शोध समक्षात्मक ग्रन्थ, एक काव्यात्मक अभिनन्दन-ग्रन्थ, दो स्मारिकाएँ तथा तीन पत्र-पत्रिकाओं के विषेशांक भी प्रकाशित हो चुके हैं।

डॉ. दवे : आपको हरियाणा के समकालीन साहित्य का प्रथम शोधार्थी तथा अधिकारी विद्वान माना जाता है, डॉ. बालशौरि रेड्डी और डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल' जैसे विद्वानों ने तो आपको 'हरियाणवी साहित्य का पुरोधा' तक कहा है। इसका कारण?

डॉ. 'मानव' : मैं हरियाणा में रचित समकालीन हिन्दी-साहित्य से प्रारम्भ से ही जुड़ा हूँ। मैं इसी विषय पर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरि.) से पी-एच.डी. करना चाहता था। लेकिन तब कहा जाता था कि हरियाणा में कल्चर के नाम पर सिर्फ़ एग्रीकल्चर है। हरियाणा में रचित साहित्य को तब पी-एच.डी. करने योग्य नहीं माना जाता था। पाँच-छः वर्षों के लम्बे और अनवरत संघर्ष के बाद, सन 1983 में मेरा पी-एच.डी. हेतु पंजीकरण हुआ तथा सन् 1987 में मैंने 'हरियाणा में रचित सृजनात्मक हिन्दी-साहित्य का मूल्यांकन' विषय पर अपना शोध-प्रबन्ध पूर्ण किया। कालान्तर में, इसी विषय को आगे बढ़ाते हुए, मैंने 'हरियाणा में रचित हिन्दी-महाकाव्य' विषय पर, सन् 2000 में, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार) से डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। हरियाणवी साहित्य के समुचित मूल्यांकन हेतु मेरा प्रयास तीन दशकों तक जारी रहा। मैंने हरियाणा के समकालीन हिन्दी-साहित्य पर अनेक शोधपत्र लिखे, संगोष्ठियाँ तथा परिचर्चाएँ आयोजित कीं, अनेक ग्रन्थ प्रकाशित करवाये और अपने निर्देशन में अनेक शोध-छात्रों को एम.फिल. तथा पी-एच.डी. करवाई। मेरे शोधकार्य के बाद ही, हरियाणा में, सही अर्थ में, शोध का वातावरण बना तथा कालान्तर में यहाँ जितना भी शोधकार्य हुआ, उसके मूल में मेरा शोधकार्य और शोध-प्रेरणा ही रही। मेरा एक प्रयास यह भी था कि हरियाणा के विश्वविद्यालयों में, एम.ए. के स्तर पर, हरियाणा का हिन्दी-साहित्य पढ़ाया जाये। मुझे यह बताते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि आज हरियाणा के कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र में एम.एम. (हिन्दी) द्वितीय वर्ष में 'हरियाणा का हिन्दी-साहित्य' नामक सौ अंकों का प्रश्न-पत्र पाठ्यक्रम में शामिल है तथा इसमें मेरी भी चार कविताएँ तथा दो शोध-प्रबन्ध सम्मिलित हैं। मेरे इस योगदान तथा भूमिका को देखकर ही शायद उक्त विद्वानों ने मुझे 'हरियाणवी साहित्य का पुरोधा' कहा है। लेकिन यहाँ मैं जोड़ना चाहूँगा कि इस कार्य में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र में हिन्दी-विभाग के तत्कालीन आचार्य तथा अध्यक्ष डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल' का भी मुझे भरपूर सहयोग मिला, उनके सहयोग और श्रम के बिना इतनी बड़ी उपलब्धि कतई सम्भव नहीं थी। आज हरियाणा के सम्पूर्ण साहित्य और साहित्यकारों पर शोधकार्य हो चुका है, तो इसका बहुत-कुछ क्षेत्र डॉ. 'मंगल' को भी जाता है।

डॉ. दवे : आपका जीवन बड़ा संघर्षपूर्ण रहा है। इस सम्बन्ध में कुछ बताना चाहेंगे?

डॉ. 'मानव' : मुझे लगता है, संघर्ष ही मेरी नियति है। मैंने अपनी एक छोटी-सी कविता 'क्या मिला' में लिखा है-'जीवन में क्या मिला/सिर्फ अभाव/और संघर्षों का सिलसिला।' सचमुच बचपन से आज तक अभावों, दबावों और तनावों से जूझता आया हूँ। थकना, रुकना और झुकना मुझे स्वीकार नहीं था, तो दुनिया को मेरा अकेले, अपने दम पर, स्वाभिमान से जीना रास नहीं आया। इसलिए टकराव और टूटन का सिलसिला एक बार प्रारम्भ हुआ, तो अभी तक ज़ारी है। सच कहूँ-

यह दुनिया, यह व्यवस्था, कभी न आई रास।
जीने को अभिशप्त है, फिर भी रामनिवास।।

डॉ. दवे : आप प्रतिष्ठित बाल कवि भी हैं। अत: काव्य और बालकाव्य के सम्बन्ध तथा बालकाव्य में बालरुचि और बाल-मनोरंजन के समावेश के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है?

डॉ. 'मानव' : कुछ कवि बालकाव्य को काव्य से सर्वथा भिन्न विधा मानते हैं, जिसे बालरुचि और बाल-मनोरंजन को ध्यान में रखकर रचा जाता है, लेकिन जिसमें कवित्व का समावेश आवश्यक नहीं है। इससे उलट मेरी स्पष्ट मान्यता है कि बालकाव्य भी मूलत: काव्य ही है, जिसमें उन सभी गुणों का कमोवेश समावेश आवश्यक है, जिनकी हम काव्य से अपेक्षा करते हैं। अत: काव्य की भाँति, बालकाव्य में भी, यति, गति, तुक, ताल, लय और छन्द के साथ भाषा-सौन्दर्य का भी विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये। बच्चा छोटा हो या बड़ा, उसमें गीत-संगीत के प्रति नैसर्गिक लगाव और झुकाव होता है, क्योंकि वह घर में आरती, भजन-कीर्तन और संगीत सुनकर बड़ा होता है। बालकाव्य के शब्दार्थ को वह भले ही ठीक-से न समझे (संगीत के साथ गाये जाने वाले सभी गीतों के शब्दार्थ को बड़े भी कहाँ समझ पाते हैं!), लेकिन उसकी लयात्मकता, ध्वन्यात्मकता अथवा नाद-सौन्दर्य उसे, निश्चय ही, प्रभावित करता है। यहाँ मैं एक उदाहरण देकर बात स्पष्ट करना चाहूँगा। मेरी बेटी अनुकृति जब दो-तीन वर्ष की ही थी, तब मैं अक्सर उसे गाकर बालगीत सुनया करता था। उसे बालगीत समझ में आते थे या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता, पर गीत समाप्त होते ही वह तुरन्त कहती थी-'औल।'

इससे स्पष्ट है कि ध्वन्यार्थ-व्यंजना के कारण बालगीत बच्चों को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। मैंने अपनी 'आई वर्षा' बाल-कविता, छाता ओढ़कर बरसात का आनन्द लेते हुए, कई बार बच्चों को सुनाई है और हर बार बच्चों ने इसकी सार्थकता सिद्ध की है। उक्त कविता की चन्द पंक्तियाँ उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत हैं, जिन्हें कोई भी बच्चा न केवल आसानी से समझ सकता है, बल्कि आनन्द भी उठा सकता है-

काले बादल, बरसाते जल।
लगी झड़ी है, सुखद बड़ी है,
ताल-तलैये, भूल-भुलैये।
सबमें पानी, धुर तक पानी।
प्यारे-प्यारे बच्चे सारे।
नाचें-गायें, नाव चलायें।

खूब नहायें, खिल-खिल जायें।

बैर मिटायें, प्यार बढ़ायें।

कुछ कवि मित्र बालकाव्य में बालरुचि और बाल-मनोरंजन को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हैं। बालकाव्य में हर बात, हर विषय बालरुचि ओर बाल-मनोरंजन के अनुरूप ही हो, यह कतई आवश्यक नहीं है। बच्चे की अपनी रुचि क्या होती है? उसकी रुचि परिष्कृत ही कहाँ होती है! 'सब-कुछ बच्चों की रुचि के अनुरूप होना चाहिये' की रट लगाने वाले कवियों से यह पूछा जाना चाहिये कि यदि उनके बच्चों की रुचि, स्कूल में न जाकर, स्कूल के समय खेलने में अथवा टी.वी. पर कार्टून फिल्में देखने में है, तो क्या वे उन्हें ऐसा करने देंगे। इसी प्रकार, यदि बच्चे राह चलते लोगों पर कीचड़ फेंकने लगें, तो क्या इसे बाल-मनोरंजन का कार्य कहकर स्वीकार किया जा सकता है? नहीं। वस्तुत: बालकाव्य श्रेष्ठ और उपयोगी माना जाता है, जिसमें शिक्षा अथवा उपदेश की कुनैन पर मनोरंजन की मिठास लगी होती है। मात्र मनोरंजन के निमित्त लिखा जाने वाला न काव्य उपयोगी होता है और न बालकाव्य। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की निम्नलिखित पंक्तियाँ काव्य और बालकाव्य, दोनों पर, समान रूप से चरितार्थ होती हैं-

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिये।

उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिये।

डॉ. दवे : कुछ लोगों की धारणा है कि घिसे-पिटे, परम्परागत विषयों की बजाय नितान्त नवीन विषयों का समावेश बालकाव्य में होना चाहिये। यह बातें कहाँ तक सही हैं?

डॉ. 'मानव' : यह बात भी आंशिक रूप में ही स्वीकार्य है। नवीनता का, नवीन विषयों का आग्रह हर युग में, हर कवि में रहा है। वह कवि ही क्या, जिसके भावों में, अभिव्यक्ति में, काव्य में नवीनता न हो। लेकिन नवीनता के नाम पर, बालकाव्य के रूप में, कुछ भी बच्चों के सम्मुख परोस देना उचित नहीं है। मनुष्य की (और बच्चे की भी) रुचियाँ, प्रवृत्तियाँ, आवश्यकताएँ और क्रियाकलाप मूलत: वही हैं, जो सैकड़ों वर्षों से चले आ रहे हैं, उनमें युगानुरूप परिष्कार तो हुआ है, परिवर्तन नहीं। ऐसे में माँ-बाप, दादा-दादी, नाना-नानी, कुत्ते-बिल्ली, फूल-फल, बादल-बिजली जैसे विषयों को पुराना और घिसा-पिटा कहकर कैसे छोड़ा जा सकता है! कम्प्यूटर और इन्टरनेट की बात करने वाले ये महानुभाव कम्प्यूटर पर नये पुराने, सभी ढंग के कार्यक्रम बच्चों को दिखायें, तो इन्हें पता चल जायेगा कि कार्टून फ़िल्मों की बजाय 'जंगल बुक' जैसे सीरियल बच्चे अधिक पसन्द करते हैं। 'डिस्कवरी' और 'ज्योग्राफ़िक' जैसे चैनलों पर बच्चे पशु-पक्षियों, प्रकृति, मानव-सभ्यता और ज्ञान-विज्ञान से जुड़े कार्यक्रमों को अधिक चाव और मनोयोग से देखते हैं। वस्तुत: बचपन में, अधिकतर बच्चों में, जानने की इच्छा बड़ी प्रबल होती है, अत: वे ज्ञानप्रद साहित्य को अधिक पसन्द करते हैं, उसका विषय नया हो या पुराना, इससे उन्हें विशेष फ़र्क नहीं पड़ता। बच्चा जो पढ़ता और देखता है, उसके लिए वह नया ही होता है, उसने वह सब पहले कहाँ देखा-पढ़ा होता है! कार्टून फ़िल्में तथा 'स्पाईडर मैन' जैसे सीरियल नवधनाढ्य घरों के बिगड़ैल बच्चे ही अधिक देखते हैं, जिनके डैडी अक्सर कार्यालय में व्यस्त रहते हैं, तो मम्मियाँ किटी पार्टियों में। हाँ, विषय की प्रस्तुति सुन्दर, सार्थक

और सरस ढंग से होनी चाहिये, तभी तो वह 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' की उक्ति को चरितार्थ कर सकेगी।

विषय से ही जुड़ी एक बात और। जीवन बड़ा जटिल है, यह जानते हुए भी अनेक कवि मानते हैं कि बच्चों को जीवन की कठोर सच्चाइयों से दूर ही रखा जाना चाहिये, ताकि उनके सुकोमल मन पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। इसलिए वे बालकाव्य में अकाल, बाढ़, भूकम्प, दुर्घटना जैसे विषयों का चित्रण अनुचित मानते हैं। लेकिन यह बात समझ से परे है कि साइबर युग और 21वीं शताब्दी की बात करने वाले ये लोग यह क्यों भूल जाते हैं कि बच्चे ये सब बातें, हमारी ही तरह, रोज़ टी.वी. पर देख लेते हैं, समाचार-पत्रों में पढ़ लेते हैं। उनके सुकोमल बालमनों पर बालकाव्य से अधिक प्रभाव तो इन माध्यमों का पड़ता है। फिर बालकाव्य में इन विषयों का समावेश वर्जित क्यों?

संक्षेप में निष्कर्ष यह कि बालकाव्य को सुरुचिपूर्ण और मनोरंजक होना चाहिये और यह तभी सम्भव है, जब सभी काव्यगुणों का समावेश तथा समुचित कवित्व का विधान भी उसमें हो।

डॉ. दवे : अब थोड़ी चर्चा लघुकथा के सम्बन्ध में। आप हिन्दी के प्रतिमानक लघुकथाकार माने जाते हैं तथा इस विधा के विकास में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अत: अपने लघुकथा-लेखन के सम्बन्ध में जानकारी दीजिये।

डॉ. 'मानव' : लघुकथा-लेखन से मैं सन् 1977 में जुड़ा। तब किसी पत्रिका ने, लघुकथा-विशेषांक हेतु, मुझसे लघुकथा माँगी थी, जबकि मैंने तब तक एक भी लघुकथा नहीं लिखी थी। मैं उस पत्रिका के विशेषांक हेतु तो लघुकथा नहीं भेज पाया, लेकिन लघुकथा से अवश्य जुड़ गया। 5 नवम्बर, सन् 1977 को रचित 'रिज़र्वेशन' मेरी प्रथम लघुकथा है, तो 'परिचित' मेरी प्रथम प्रकाशित लघुकथा है, जो 'वीणा' (इन्दौर) के दिसम्बर, सन् 1979 अंक में प्रकाशित हुई थी। सम्भव है, सन् 1978-1979 में मेरी कुछ और लघुकथाएँ भी प्रकाशित हुई हों, लेकिन अभी इनकी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। तत्पश्चात् तो देश-भर की सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं तथा सभी विशिष्ट संकलनों में मेरी लघुकथाएँ प्रकाशित हुईं। मेरे चार लघुकथा-संग्रह प्रकाशित हैं, वे हैं-'ताकि सनद रहे', 'घर लौटते क़दम', 'इतिहास गवाह है' और 'हो चुका फैसला' 'घर लौटते कदम' और 'इतिहास गवाह है' के तो दूसरे संस्करण भी छप चुके हैं। पंजाबी, गुजराती, मराठी, कन्नड़, उर्दू, संस्कृत, असीमिया, भोजपुरी आदि अनेक भारतीय भाषाओं में मेरी शताधिक लघुकथाएँ अनूदित होकर इन भाषाओं की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। पंजाबी, मराठी, भोजपुरी, नेपाली और अंग्रेजी में अनूदित मेरे संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। मेरी लघुकथाओं पर एम.फिल. हेतु आठ बार तथा पी-एच.डी. हेतु दो बार शोधकार्य सम्पन्न हो चुका है। हिन्दी-लघुकथा पर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. करने वाली शोध-छात्रा इरा शर्मा ने मेरे दो लघुकथा-संग्रहों को आधार-ग्रन्थ के रूप में अपने शोध-प्रबन्ध में शामिल किया था। लघुकथा-सम्बन्धी आधा दर्जन से अधिक सम्मान तथा पुरस्कार भी मुझे प्राप्त हो चुके हैं।

डॉ. दवे : कथा के अन्तर्गत आपने केवल लघुकथा पर लिखा या लघुकथाएँ ही लिखी हैं। क्या कहानी-उपन्यास में आपका लेखन-रुझान नहीं बना?

डॉ. 'मानव' : कविता के बाद मेरी सर्वाधिक रुचि लघुकथा-लेखन में ही है। कथा-साहित्य के सन्दर्भ में आप कह सकते हैं कि मैं मूलत: लघुकथाकार ही हूँ। प्रारम्भ में मैंने कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं, लेकिन विशेष रुझान नहीं बना। उपन्यास लिखना तो दूर, मेरे लिए पढ़ना भी मुश्किल है। कथा को अधिक विस्तार न दे पाने की कमज़ोरी के कारण ही मैं लघु साहित्यिक विधाओं में लिखता हूँ।

डॉ. दवे : अपनी रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में भी कुछ बतायें।

डॉ. 'मानव' : मेरा न लिखने का कोई निश्चित समय है, न लिखने का मूड बनाना पड़ता है तथा न ही विशेष कागज या पेन की आवश्यकता मुझे पड़ती है। जब मन हुआ, तब लिख दिया। मैंने अनेक रचनाएँ सुबह-सुबह चार-पाँच बजे भ्रमण करते हुए अथवा रात को नींद आने से पूर्व, बार-बार बिस्तर से उठ कर लिखी हैं। कागज और पेन हमेशा मेरे गाउन की जेब में तथा पलँग के सिरहाने रखे रहते हैं। कागज नहीं मिलता, तो समाचार-पत्र जिंदाबाद, नये कोरे कागज पर अथवा डायरी-रजिस्टर में मैंने शायद ही कभी कुछ लिखा हो। मेरी अधिकतर रचनाएँ रफ प्रूफ के दूसरी ओर, समाचार-पत्रों से निकले इश्तहारों पर अथवा समाचार-पत्रों के खाली स्पेस पर लिखी गई हैं। मैं समाचार-पत्रों में आने वाले इश्तहारों को संभाल कर रख लेता हूँ और फिर वही मेरे लेखन का आधार-फलक बनते हैं। मैं बाल्यकाल से ही बिना शिरोरेखा के लिखता आया हूँ, लाइनदार कागज पर लिखना मेरे लिए संभव नहीं। यह मेरे स्वभाव के अनुरूप भी है, क्योंकि मैं जीवन में बनी-बनाई लीक पर नहीं चला, सदा नई लीक खींची है और उसी पर चलने का प्रयास मैंने किया है।

मेरी कोई रचना, चाहे कविता हो, बालगीत हो या लघुकथा, कभी एक ही बार में नहीं लिखी गई। प्रारम्भ में हर रचना रफ रूप में लिखी जाती है, बाद में मैं उसे संशोधित करता हूँ। मैं अपनी रचनाओं को बार-बार पढ़ता हूँ और जितनी बार पढ़ता हूँ, उतनी ही बार कुछ-न-कुछ संशोधन उसमें होता रहता है। रचनाओं के भाषा-शिल्प पर मेरा बहुत ध्यान रहता है, यहाँ तक कि विराम-चिह्न कहां लगना है, उस पर भी मैं किसी वैयाकरण की भाँति विचार करता हूँ। आजकल कविताओं में, विशेषकर दोहों-ग़ज़लों के अंत में विराम-चिह्नों का प्रयोग लगभग समाप्त हो गया है, जो मुझे बहुत अखरता है। हाँ, चन्द्र-बिन्दु का प्रयोग मैं नहीं करता, मात्र बिन्दु से ही काम चला लेता हूँ। अंग्रेजी के शब्दों में, जहाँ कहीं आवश्यक होता है, चन्द्र का प्रयोग मैं अवश्य करता हूँ, यथा डॉक्टर, कॉलेज आदि। मेरी स्पष्ट मान्यता है कि कवि-लेखक चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, एक ही बार में लिखी गई अपनी किसी रचना को अंतिम रूप नहीं दे सकता। संशोधन के बिना रचना में अनेक भाषायी और व्याकरणिक त्रुटियाँ रह जाती हैं, जयशंकर प्रसाद रचित 'कामायनी' महाकाव्य इसका प्रमाण है।

नित कुछ नया करने तथा निरंतर कुछ-न-कुछ नया करने की प्रवृत्ति मुझमें रही है। यही कारण है कि मैंने अनेक नये प्रयोग अपनी रचनाओं में किये हैं, अनेक नयी शैलियाँ भी मैंने विकसित की हैं। कविता, मुक्त-छन्द कविता, गीत, ग़ज़ल, क्षणिका, मुक्तक, कुंडलियाँ, दोहा, द्विपदी, त्रिपदी, हाइकु, ताँका, सेदोका, कथाकाव्य आदि सभी काव्य-विधाओं-उपविधाओं में मैंने लिखा है। कविताओं में तुक-विधान के जितने प्रयोग हो सकते हैं, सब मैंने किये हैं। द्विपदी और त्रिपदी विधाओं को प्रतिष्ठित

करने का श्रेय मुझे ही दिया जाता है। मेरे हाइकु और ताँका संग्रह को हरियाणा में प्रकाशित प्रथम संग्रह होने का गौरव प्राप्त है, वहीं मेरा 'सत्य यही है' संग्रह तो सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य का प्रथम सेदोका-संग्रह है। हिन्दी के ताँका-काव्य पर आज तक केवल एक बार पी-एच.डी. हुई है वह भी मेरे ताँका-काव्य पर। अस्तु, मेरे काव्य के इस विधात्मक वैशिष्ट्य के कारण ही, 'डॉक्टर रामनिवास मानव के काव्य का विधात्मक वैशिष्ट्य' विषय पर डी. लिट्. भी हो चुकी है। यही स्थिति मेरे बालकाव्य और लघुकथा-साहित्य की है। सभी नयी-पुरानी विधाओं और शैलियों में तो मैंने बालकाव्य रचा ही है, 'डींगाराम' जैसी बाल-कविता भी मैंने लिखी है, जिसकी हर पंक्ति में किसी मुहावरे या लोकोक्ति का प्रयोग हुआ है। लघुकथाओं में भी मेरी प्रयोगधर्मिता कथानक, पात्र-योजना और शैली से लेकर शीर्षक तक में देखी जा सकती है। वर्णानात्मक, विवरणात्मक, संवादात्मक, पत्रात्मक, प्रथम पुरुष शैली, डायरी शैली आदि शैलियों में तो मैंने लघुकथाएँ लिखी ही हैं, समाचार-शैली आवेदन-पत्र शैली और काव्यात्मक-शैली का लघुकथा-साहित्य में सर्वप्रथम प्रयोग मैंने ही किया है। मेरी लघुकथाओं की शीर्षक-योजना भी वैविध्य की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

डॉ. दवे : आपने मात्र लघुविधाओं में ही लिखा है। ऐसा क्यों?

डॉ. 'मानव' : कह चुका हूँ कि रचनाओं को विस्तार मैं नहीं दे पाता। इसलिए कथाकाव्य से मुक्तक-काव्य और मुक्तक-काव्य में भी हाइकु तक मैं आ गया हूँ। कुछ लोगों की मान्यता है कि महाकाव्य, उपन्यास या नाटक लिखे बिना कोई बड़ा लेखक नहीं बन सकता। यह बात सही भी हो सकती है। लेकिन मेरा मानना है कि यदि कहने को कुछ हो, और लिखने का ढंग आपको आता हो, तो थोड़े शब्दों में या लघु रचना के माध्यम से भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। उदाहरण-स्वरूप मैंने एक हाइकु में अपनी आत्मकथा लिखी है-''था अभिनेता/बना दिया भाग्य ने/मात्र दर्शक।'' मैंने इस हाइकु में, अपने विषय में जो कुछ भी कह दिया है, उससे अधिक मैं सैकड़ों पृष्ठों की एक विशाल आत्मकथा लिखकर भी नहीं कह सकता था। वस्तुत: मेरी यह काव्य-यात्रा अणु से परमाणु तक की यात्रा ही तो है। वैसे भी, मेरे जैसा व्यक्ति जिसकी जीवनी या आत्मकथा डाक टिकट के पीछे लिखी जा सकती है, न वह अपनी रचनाओं को विस्तार दे सकता है और न विस्तार से कुछ लिखने की आवश्यकता ही उसे होती है। सच में, मेरी हर रचना मेरी आत्मकथा है। बहरहाल यहाँ प्रस्तुत हैं मेरे कुछ दोहे, जिनके माध्यम से मेरे कथ्य, भाषा-शैली और रचनाधर्मिता, सभी को एक साथ समझा जा सकता है-

बार-बार लिखकर थकी, थककर हुई उदास।
कब लिख पाई लेखनी, आँसू का इतिहास।।
घुटन, अँधेरा यातना, पर्वत जैसी पीर।
मैं पत्थर हूँ, नींव का, लिखा यही तकदीर।।
पाया कम, खोया अधिक, जाने किसका दोष।
अपनी शर्तों पर जिया, बस इसका संतोष।।
जब-जब भी पर्दा उठा, दिखा अधूरा सत्य।
अनदेखा ही रह गया, जीवन का नेपथ्य।।

डॉ. दवे : साहित्य के स्वरूप और महत्व पर आपके विचार?

डॉ. 'मानव' : विधाता की प्रथम कृति है प्रकृति, जो सर्वाधिक सुन्दर तो है ही, अत्यधिक रहस्यपूर्ण और रोमांचकारी भी है। यह कब, कैसे और किसके द्वारा बनाई गई है, यह आज तक कोई नहीं जान पाया है। किन्तु यह सर्वमान्य सत्य और प्रामाणिक तथ्य है कि संसार की अन्य सभी कृतियों और कलाओं का विकास इसी कृति अर्थात् प्रकृति की प्रेरणा से ही हुआ है। काव्य भी उनमें से एक है। कला के प्रति मनुष्य का रुझान नैसर्गिक तथा जन्मजात है। शिशु, थोड़ा-सा बड़ा होते ही, फूलों को छूना, तितलियों को पकड़ना और इन्द्रधनुष को धरती पर उतार लाना चाहता है। कल्पनाओं के सहारे उड़ना तथा रंगीन सपने देखना किशोर-मन के दो विशिष्ट पहलू हैं। यहीं से पैदा होती है कविता, यहीं पर जन्म लेता है साहित्य, जो किशोर-मन को और भी भावुक तथा संवदेनशील बना देता है। किन्तु जब किशोर-मन अथवा युवा हृदय जीवन के कटु यथार्थ से टकराता है, उदास-निराश-हताश होता है, टूटकर बिखरने की नौबत आ जाती है, तब यही कविता अथवा साहित्य उसका सम्बल बनता है और उसे देता है आगे बढ़े की प्रेरणा तथा बाधाओं से टकराने का साहस। जैसे प्रकृति सुख-दु:ख में हमारे साथ हँसती-रोती है, ठीक उसी प्रकार काव्य भी, इस स्थिति-परिस्थिति में, सहचर बनकर हमारा साथ निभाता है।

काव्य बड़ा प्रेरक और प्रभावशाली होता है, उसकी शक्ति और गहराई की थाह पाना आसान नहीं है। इसे मैंने अनेक बार, बार-बार, हर बार अनुभव किया है। मेरे जीवन में, बचपन से लेकर आज तक, कुछ भी ऐसा नहीं हुआ, जिसे सुखद और सन्तोषप्रद कहा जा सके। कभी कल्पनाओं ने भरमाया, तो कभी सपनों ने बरगलाया, कभी महत्त्वाकांक्षाओं ने अटकाया, तो कभी सत्याग्रहों ने भटकाया और पूरा जीवन बन गया साक्षी अभावों का, संघर्षों का। असफलताओं का एक ऐसा दौर चला, जो थमने का नाम ही नहीं ले रहा। राम ने तो चौदह वर्षों का तथा पांडवों ने तेरह वर्षों का वनवास भोगा था, लेकिन मुझे तो उन दोनों के बराबर-सत्ताईस वर्षों का वनवास भोगना पड़ा और आज भी भोग रहा हूँ मेरे स्थान पर कोई और होता, तो वह कुछ भी कर सकता था या उसके साथ कुछ भी हो सकता था। किन्तु सौभाग्य से हर बार साहित्य ने, सृजन ने मुझे बचा लिया, हर अच्छी-बुरी परिस्थिति में मुझे मानव बनाये रखा, न देव बनने दिया और न ही दानव। क्या इससे भी बड़ी कोई बात हो सकती है साहित्य के पक्ष में?

साहित्य व्यक्ति को माँजता और निखारता ही नहीं, विस्तार भी देता है। 'मैं' से 'हम' और 'व्यष्टि' से 'समष्टि' तक की यात्रा, मनुष्य साहित्य की नौका में बैठकर ही, पूरी करता है। व्यक्ति पैरों से तो चलता ही है, उसके मन की अन्तर्यात्रा भी आजीवन जारी रहती है और इस अन्तर्यात्रा के दौरान पता नहीं कब उसकी कुंडली जागृत हो जाती है, कब उसका तीसरा नेत्र खुल जाता है और पता नहीं कब वह, महाभारत के संजय की भाँति, अग-जग में घटने वाला सब-कुछ अपनी आँखों से तो देखने लगता ही है, दुनिया को भी दिखाने लगता है। कह सकता हूँ, यह मेरा अनुभूत सत्य है। मेरे सृजन में, इस अनुभूत सत्य की, प्रामाणिक साक्षी विद्यमान है।

डॉ. दवे : वर्तमान में आप साहित्य की भूमिका को किस प्रकार देखते हैं? कहीं साहित्य अपनी

प्रासंगिकता खो तो नहीं रहा?

डॉ. 'मानव' : दवे जी, एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि जब तक मनुष्य रहेगा, साहित्य भी जीवित रहेगा। परिस्थितियों और परिवेश के अनुसार साहित्य का स्वरूप बदल सकता है, लेकिन उसकी प्रासंगिता सदैव बनी रहेगी। यह सत्य है कि फिल्मों तथा संचार के विभिन्न साधनों ने साहित्य पर प्रभाव डाला है, लेकिन इनमें से कोई साधन, कोई माध्यम इतना सशक्त नहीं है कि साहित्य को समाप्त कर दे। वैसे भी साहित्य तो मनुष्य के हृदय, मन और आत्मा की खुराक है, इसके बिना वह जीवित कैसे रह सकता है! हां, यह विचारने वाली बात है कि वर्तमान में साहित्य की क्या भूमिका है या साहित्यकार अपनी भूमिका किस प्रकार निभा रहे हैं। इस सन्दर्भ में मैं इतना ही कहूँगा कि तथाकथित बड़े, चर्चित अथवा मीडिया पर हावी साहित्यकारों की तुलना में वे साहित्यकार कहीं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, जो कम चर्चित हैं।

डॉ. दवे : कहा जाता है कि आज साहित्य के सम्मुख पठनीयता का संकट है। इसके लिए आप किसे दोषी मानते हैं- पाठक, लेखक या दोनों को?

डॉ. 'मानव' : मैं नहीं मानता कि साहित्य के सम्मुख ऐसा कोई संकट है। यदि ऐसा होता, तो प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में पुस्तकें कैसे छपतीं और उनकी करोड़ों प्रतियाँ कैसे बिकतीं? आज तो कितनी ही पुस्तकों के कई-कई संस्करण निकल रहे हैं, स्वयं मेरी कई कृतियों के दो-दो, तीन-तीन संस्करण निकल चुके हैं। फिर भी, यदि थोड़ी देर के लिए यह मान लिया जाये कि ऐसा कोई संकट है, तो मैं कहूँगा-यह पठनीयता का नहीं, विश्वसनीयता का संकट है। आप समकालीन कविता को ले लीजिये। तथाकथित बड़े/चर्चित कवि क्या लिख रहे हैं, उसे समझना तो मेरे-आप जैसे प्रबुद्ध पाठकों के बस की बात भी नहीं है, फिर आम पाठक क्या समझेगा? और समझेगा नहीं, तो पढ़ेगा क्यों? हम अपनी असफलता को छुपाने के लिए आमजन अथवा सामान्य पाठक की समझ पर सन्देह नहीं कर सकते। कबीर और तुलसी को किसने जीवित रखा है? फिल्मों को देख लीजिये। सैक्स और हिंसा से भरी फिल्में पिट जाती हैं, लेकिन 'हम आपके हैं कौन?' और 'बागबां' जैसी फिल्में सफलता के नये कीर्तिमान स्थापित कर जाती हैं। लगभग यही स्थिति साहित्य की है। मेरे विचार से साहित्य को साहित्य होना चाहिये-न चटपटा और न अटपटा। ऐसा ही साहित्य सार्थक होता है, और कालजयी भी।

डॉ. दवे : एक प्रश्न और। अब बहुत सारा साहित्य इन्टरनेट पर आ रहा है, आपका भी लगभग सारा साहित्य वेबसाइट पर उपलब्ध है। इसके सम्बन्ध में क्या कहेंगे आप?

डॉ. 'मानव' : साधन तो बहुत अच्छा है, इन्टरनेट पर अपना साहित्य देखकर अच्छा भी लगता है, लेकिन अभी इसका प्रभाव सीमित है, क्योंकि कम्प्यूटर और इन्टरनेट की सुविधा बहुत कम लोगों के पास है। हाँ, इसका भविष्य उज्ज्वल है, इसे भविष्य का माध्यम भी कह सकते हैं।

सम्पर्क : नारनौल (हरियाणा)

राजेन्द्र परदेसी

युगानुभूति के चितेरे मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त ने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही भारत-भारती के मन्दिर में अपने काव्य-सुमन चढ़ाने आरम्भ कर दिये थे और अर्द्ध-शताब्दी से भी अधिक समय तक अनवरत रूप से भारत-भारती के भण्डार की पूर्ति करते हुए अनन्य भाव से अपने काव्य-सुमनों द्वारा पूजा-अर्चना करते रहे। इतनी दीर्घावधि तक साहित्य-देवता की पूजा-अर्चना करने का सौभाग्य विरले ही साहित्यकार को प्राप्त होता है। इसी कारण गुप्त जी ने जीवन और जगत की विषय परिवर्तित गति-विधियों का भली-भाँति साक्षात्कार किया था और साहित्यिक क्षेत्र में होने वाले अन्यान्य परिवर्तनों का भी बड़ी तत्परता एवं लगन के साथ अध्ययन एवं अनुशीलन किया था।

गुप्त जी ने जिस समय अपने साहित्य का सृजन आरम्भ किया उस समय सामाजिक क्षेत्र एक ओर तो राजा राममोहन राय द्वारा प्रवर्तित ब्रह्मसमाज के विचारों से आन्दोलित होकर समाज, वर्ग एवं वर्ण सम्बन्धी भेद-भाव भूलकर एकता और समता की ओर अग्रसर हो रहा था, पारस्परिक सहानुभूति एवं संवेदना से ओत-प्रोत होने लगा था, और छुआछूत, बहुविवाह, सामाजिक विषमता आदि परम्परागत रूढ़ियों से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील था। दूसरी ओर महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज के विचार से प्रभावित होकर भारतीय समाज बाल-विवाह, बहु-विवाह, अस्पृश्यता, पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा, आदि कुप्रथाओं का विरोध करता हुआ, शुद्धि आन्दोलन द्वारा अस्पृश्य भाईयों को गले लगा रहा था, वेदों को सर्वश्रेष्ठ घोषित करते हुए भारत के अतीत कालीन गौरव की ओर आकृष्ट हो रहा था। जाति-पाँति की कष्टप्रद प्रथा को तोड़कर अन्तरजातीय विवाह को प्रश्रय दे रहा था और स्त्री-स्वातंत्र्य को प्रश्रय देकर नारी शिक्षा की भी प्रेरणा दे रहा था। तीसरी ओर थियोसोफिकल सोसाइटी, राधास्वामी मत, प्रार्थना समाज आदि संस्थाओं और स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द महात्मा गाँधी आदि महापुरुषों के विचारों से प्रभावित होकर भारतीय समाज उत्तरोत्तर विश्व-बन्धुत्व सर्वभूतहित, लोक-सेवा, सामाजिक समानता, सवार्थपरता का परित्याग, निष्काम कर्म, अस्पृश्यता निवारण, देश एवं जाति के लिए सर्वस्व त्याग एवं बलिदान, पुरुषार्थ की महत्ता, नारी की गरिमा, हिन्दु-मुस्लिम एकता, सांस्कृतिक समानता, भेद में भी अभेंद दिखाता मानवतावाद आदि के विचारों को अपनाता चला जा रहा था।

मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य में युग के सामाजिक विचार स्थान-स्थान पर व्यक्त हुए हैं। उन्होंने देखा कि समाज की प्रगति में यह ऊँच-नीच की भावना बड़ा व्याघात उत्पन्न कर रही है। समाज के एक वर्ग ने अपने को उच्च एवं उन्नत समझ कर समाज के दूसरे वर्ग को नीच एवं पतित कहना शुरू कर दिया है। उसे समस्त सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया है तथा उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को धूल में मिलाकर उसकी प्रगति एवं उन्नति के पथ को सदैव के लिए अवरुद्ध कर दिया है। गुप्त जी समाज के उस वर्ग को भी समान आदर एवं प्रतिष्ठा दिलाने के लिए कहते हैं-

उत्पन्न हो तुम प्रभु-पदों से जो सभी को ध्येय हैं।
तुम हो सहोदर सुरसरी के चरित जिसके गेय हैं।।

गुप्त जी जानते थे कि भारतीय समाज में धर्म, जाति, मत, सम्प्रदाय, प्रान्तीयता भाषा आदि के आधार पर अनेक भेद-प्रभेद दिखाई देते हैं, जिनसे निरंतर सामाजिक विषमता की वृद्धि हो रही है और हमारी एकता एवं अखण्डता नष्ट होती चली जा रही है। कवि ने इस व्याप्त भिन्नता में भी अभिन्नता को देखने की अथवा भेद में भी अभेद दृष्टि रखने की सलाह दी, जिससे सामाजिक एकता खण्डित न हो और हम विदेशी सत्ता के चंगुल से मुक्त होकर सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ प्राप्त कर सकें-

अनुदारता-दर्शक हमारे दूर सब अविवेक हों
जितने अधिक हों तन भले हैं, मन हमारे एक हों
आचार में कुछ भेद हो पर प्रेम हो व्यवहार में
देखें हमें फिर कौन सुख मिलता नहीं संसार में

गुप्त जी ने समाज की विषमता को दूर करने के लिए समाज में क्रान्ति लाने का उद्घोष किया है और सदैव सजग एवं जागरूक होकर अपनी श्रीवृद्धि में प्रेरणादायक युगानुकूल कार्यों को करने की सलाह दी-

अपने युग को हीन समझना आत्महीनता होगी
सजग रहो, उससे दुर्बलता और दीनता होगी
जिस युग में हम हुए, वही तो अपने लिए बड़ा है
अहा हमारे आगे कितना कर्मक्षेत्र पड़ा है।

मैथिलीशरण गुप्त ने समाज में नारी की महत्ता का प्रतिपादन किया। तत्कालीन समाज में नारी का जो तिरस्कार हो रहा था, उसके प्रति जो अनुदार दृष्टिकोण अपनाया जा रहा था, उसके प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए कहते हैं-

हाय वधु ने क्या वर विषयक एक वासना पाई
नहीं और कोई क्या उसका पिता, पुत्र या भाई
नर के बाँटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आई
माँ, बेटी या बहन हाय! क्या संग नहीं वह लाई।

इससे आगे और कहते हैं-

अविश्वास, हा! अविश्वास ही नारी के प्रति नर का

नर के तो सौ दोष क्षमा हैं, स्वामी है वह, घर का,
उपजा किन्तु अविश्वासी नर हाय! तुझी से नारी
जाया होकर, जननी भी है तू ही पाप-पिटारी।

कवि ने इसके साथ नारी को अपने स्वामी के कार्य में समभाग लेने वाली अर्द्धांगिनी कहकर समाज में पुरुष के समान ही स्थापित किया है-

जिन स्वामियों के कार्य में समभाग जो लेतीं न वे,
अनुरागपूर्वक योग जो उसमें सदा देतीं न वे
तो फिर कहातीं किस तरह अर्द्धांगिनी सुकुमारियाँ
तात्पर्य यह-अनुरूप ही थी नरवरों से नारियाँ

गुप्त जी ने अपने युग के धार्मिक विचारों का भली-भाँति अध्ययन किया और यथोचित रूप में अपने काव्यों में उन्हें अंकित करके जन-जीवन में नवीन धार्मिक क्रान्ति लाने का प्रयत्न किया। गुप्त जी परम वैष्णव थे और राम के अनन्य भक्त थे, परन्तु उनमें संकीर्णता नहीं थी। वे सभी धर्मों में मान्य महापुरुषों एवं अवतारों के प्रति अमित आस्था एवं विपुल विश्वास रखते थे। इसी कारण आपने 'हो गया निर्गुण-सगुण साकार है' कहकर जहाँ राम का स्तवन किया है, वहाँ राम के समान ही कृष्ण में अनन्य भक्ति प्रदर्शित करते हुए 'धनुर्बाण या वेणु लो श्याम रूप के संग' कहकर दोनों का एक ही सत्ता स्वीकार की है। इसी तरह 'गुरुकुल' काव्य की रचना करके सिक्खों के धर्मगुरुओं के प्रति अत्यन्त श्रद्धा एवं प्रगाढ़ आस्था प्रकट की है और 'काबा तथा कर्बला' की रचना करके मुसलमानों के धर्म-गुरु मुहम्मद साहब के प्रति अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति प्रदर्शित की है। इतना ही नहीं 'मंगलघट' में आकर तो आपने स्पष्ट स्वीकार किया है कि राम, रहीम, बुद्ध और ईसा में कोई अन्तर नहीं, सभी उस एक ईश्वर के रूप हैं-

राम रहीम बुद्ध-ईसा का
सुलभ एक सा ध्यान यहाँ,

मैथिलीशरण गुप्त ने एक ईश्वर में सुदृढ़ विश्वास और अटूट आस्था रखने पर बल देते हुए तत्कालीन धार्मिक जगत में व्याप्त नानादेव वाद के अन्तर्गत एक हरि के दर्शन करने का आग्रह किया और 'सर्व देव नमस्कार : केशव प्रति गच्छति' के सिद्धान्त का प्रचार किया, साथ ही समाज में व्याप्त धार्मिक संकीर्णता का घोर विरोध करते हुए सभी सम्प्रदाय एवं सभी साधना-पद्धतियों के प्रति समान आस्था प्रकट करने के लिए आग्रह किया और सभी धार्मिक पुस्तकों में व्याप्त सदुपदेशों को ग्रहण करके अपने जीवन को समुन्नत बनाने की सलाह दी। उन्होंने स्पष्ट कहा कि वेद एवं कुरान धर्म-ग्रन्थों में एक जैसा ही सदुपदेश भरा हुआ है। उनसे शिक्षा ग्रहण करके सबको लोक-कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए-

उपदेशक जनजगत में, जितने हुए प्रमाण,
उन सबका उपदेश है, एक लोक कल्याण,
जहाँ भेद है रीति में, नहीं नीति में भेद,
सदुपदेश है एक ही, क्या कुरान क्या वेद।

गुप्त जी नहीं चाहते थे कि हिन्दू और मुसलमान भारत की दो प्रमुख जातियाँ धर्म के नाम पर परस्पर लड़ती रहें और इनमें फूट डालकर अंग्रेज अपनी शासन-सत्ता को सुदृढ़ एवं स्थायी बनाते चले जायें। इसी कारण आपने धर्म के नाम पर लड़ने वाले हिन्दू और मुसलमान दोनों को सचेत एवं सावधान किया-

हिन्दू मुसलमान दोनों अब छोड़ें यह विग्रह की नीति

गुप्त जी ने सिद्धराज में हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक धार्मिक कलह पर क्षुब्ध होकर स्पष्ट घोषणा की है कि ईश्वर एक है, उसे विविध रूपों में पूजा जाता है। अतः ईश्वर के नाम पर कलह करना उचित नहीं, वह तो भक्त के भाव का भूखा है। तभी तो सिद्धराज मुसलमानों से कहता है-

कह दो पुकार कर तुम-वह एक हैं
और हम पावें उसे चाहे जिस रूप में
ईश्वर के नाम पर कलह भला नहीं
देखता है भाव मात्र वह निज भक्त का।

मैथिलीशरण गुप्त ने सक्रिय राजनीति में अधिक भाग नहीं लिया। परन्तु अप्रैल 1941 में कुछ राजनीतिक गतिविधियों में सम्मिलित होने के कारण वे राजबन्दी बनाये गए और विभिन्न जेलों में रखने के बाद उन्हें 14 नवम्बर 1941 को छोड़ दिया गया। इस कारावास के कारण गुप्त जी को राजनीति में उतरने के लिए बाध्य तो किया, परन्तु वे अपने साहित्य के माध्यम से ही राजनीति में भाग लेते रहे। उनके इन राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति उनके काव्यों में स्थान-स्थान पर मिलती है। सर्वप्रथम 'भारत-भारती' की रचना करके देशवासियों को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए सचेत एवं सावधान किया और विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने का आग्रह किया-

शासन किसी पर जाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो।
संभव नहीं है, किन्तु जो सर्वांश में इष्ट हो।

मैथिलीशरण गुप्त ने जहाँ एक ओर सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टियों से अपनी युगानुकूलता का परिचय दिया है, वहीं वे साहित्यिक दृष्टि से भी पूर्णतः युग के साथ-साथ चले हैं। गुप्त जी का आविर्भाव मुख्यतया द्विवेदी युग में हुआ था और तत्पश्चात् वे छायावादी युग, प्रगतिवादी युग एवं प्रयोगवादी युग के अन्तिम चरण तक विद्यमान रहे।

द्विवेदी युग में राष्ट्र प्रेम, देश-भक्ति सांस्कृतिक जीवन की महत्ता, नारी की गरिमा, प्राचीन राज्यादर्श, समृद्ध अतीत के मनोरम चित्रों के अतिरिक्त प्रकृति का स्वतंत्र रूप में चित्रण भी आरम्भ हो गया था। परन्तु गुप्त जी ने उसे स्वतंत्र रूप से अंकित करके उसकी नैसर्गिक सुषमा की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना आरम्भ कर दिया था। जैसे-हम ग्रीष्मागमन की पंक्तियों से देख सकते हैं-

फूलों और फलों से शोभित हरे-भरे सौंदर्य निधान
चार दिवस पहले जो पादप देते थे आनन्द महान
दावानल में सम्प्रति वे ही अहो, भस्म हो रहे समूल
कहो, क्या नहीं कर सकता है जब होता है विधि प्रतिकूल

द्विवेदी युग के स्थूल एवं बाह्यार्थ निरूपणों तथा इतिवृत्तात्मक कविता प्रणाली के विरुद्ध तीव्र

आन्दोलन हुआ और इस आन्दोलन के फलस्वरूप, हिन्दी काव्य क्षेत्र में छायावाद का जन्म हुआ। इनमें हिन्दी कविताओं में स्वच्छन्दवाद को प्रश्रय मिला और लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, उपचारवक्रता, मानवीकरण आदि से ओत-प्रोत रहस्यात्मक संकेतों से भरी हुई सूक्ष्म भाव-व्यंजक कविताएँ लिखी जाने लगीं। इनमें पुनः शृंगार की प्रधानता हो गई, किन्तु अब शृंगार के स्थूल चित्रण के स्थान पर उसके वायवी रूप का चित्रण अधिक होता था और प्रकृति के भी चित्रात्मक एवं संवेगात्मक रूप का चित्रण अधिकता के साथ किया जाता था। गुप्त जी भी इन कविताओं से प्रभावित हुए और आपने भी छायावादी रचना-शैली के आधार पर कितने ही गीत लिखे, जो झंकार में संकलित हैं। जिनमें कतिपय रहस्यवादी हैं और ध्वनि चित्रण, गति-चित्रण, मानवीकरण, प्रतीकात्मकता आदि के कारण इनमें छायावादी शैली का यत्किंचित पुट विद्यमान है। इन गीतों में छायावादी प्रगीत मुक्तक-शैली को भी अपनाया गया है और 'अच्छी आँख-मिचौली खेली, बार-बार तुम छिपो और मैं खोजूँ तुम्हें अकेली' कहते हुए रहस्यवादी शैली को भी अंगीकार किया है। इतना ही नहीं, कवि ने 'यशोधरा' में भी छायावादी शैली का अनुसरण करते हुए कतिपय ऐसे गीतों की रचना की है, जिनमें लक्षणिकता, उपचारवक्रता एवं मानवीकरण का पुट विद्यमान है और जो कवि की आत्मानुभूति के सूक्ष्म रूप को प्रस्तुत कर रहे हैं-

रुदन का हँसना ही तो गान,
गा-गा कर रोती है, मेरी हुत्तन्त्री की तान
छेड़ो न वे लता के छाले, उड़ जायेगी धूल
हल्के हाथों प्रभु को अर्पण कर दो उसके फूल

छायावाद में वायवी शृंगार-परक चित्रणों के अन्तर्गत सौन्दर्य के स्वप्न अंकित किए गए थे। अब उसकी भी प्रतिक्रिया हुई, क्योंकि कवि जन अभी तक जीवन की विषमताओं को भूलकर सौन्दर्य के स्वप्न देखने में ही लीन रहे थे। अब काव्य को यथार्थ की कठोरता एवं कर्कश भूमि पर खड़ा करने का प्रयत्न आरम्भ हुआ और साम्यवादी विचारधारा के आधार पर सामन्तशाही एवं पूँजीवाद का विरोध करते हुए किसान, मजदूर एवं सर्वहारा-वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं संवेदना प्रकट करना कवि का प्रमुख कर्त्तव्य बन गया। गुप्त जी इस प्रतिक्रिया से प्रभावित हुए और उन्होंने 'किसानों' में किसानों की दयनीय दशा के चित्र अंकित करके 'पृथ्वीपुत्र' में आकर कार्ल मार्क्स के विचारों को भी काव्य-रूप दिया-

धनरूपी फल का परिश्रम ही मूल है
किन्तु श्रमिकों को फल मिलता है कितना?
पूँजीपतियों का नहीं जूठन भी जितना

इतना ही नहीं 'साकेत' में भी गुप्त जी का प्रगतिवादी स्वर सुनाई दे रहा है-

विगत हों नरपति रहे नर मात्र, और जो जिस काम के पात्र
वे रहें जन पर समान-नियुक्त, सब जियें ज्यों एक ही कुल भुक्त

मैथिलीशरण गुप्त ने प्रगतिवाद से आगे बढ़कर यशोधरा, द्वापर, विष्णुप्रिया, जयभारत आदि काव्य रचना में नवीन प्रयोगों की ओर अपनी रुचि दिखाकर प्रयोगवादी विचारधारा को भी आत्मसात करने का प्रयत्न किया है।

सारांश यह है कि मैथिलीशरण गुप्त युग की विचाराधारा से पूर्णतया अवगत होकर कवि कर्म में प्रवत्त हुए दिखाई देते हैं। उनमें संकीर्णता, रूढ़िवादिता एवं मतवादिता नहीं थी। इसी कारण ज्ञान की सभी खिड़कियाँ वह सदा खुली रखते थे और युग में जो-जो परिवर्तन समय-समय पर हो रहे थे, उन्हें अपनी कृतियों के माध्यम से जन साधारण तक पहुँचाने का स्तुत्य कार्य करते रहे। इसीलिए उनके काव्य में युग का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उनकी प्रतिभा कालानुसारणी है। जिसकी प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- 'गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है, कालानुसरण की क्षमता अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य-प्रवृतियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति' यही कारण है कि मैथिलीशरण गुप्त की सभी रचनाओं में अपने युग का सजीव चित्रण मिलता है।

सम्पर्क : लखनऊ (उ.प्र.)

कृष्ण कुमार यादव 'कनक'

डॉ. यायावर का गीतेतर काव्य : एक अनुशीलन

किसी सृजनशील रचनाधर्मी में कारयित्री और भावयित्री दोनों प्रतिभाओं की समान उपस्थिति असंभव नहीं तो दुष्प्राप्य अवश्य है। अपने को मूलत: गीतकार कहने और मानने वाले डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' में यह दुर्लभ संयोग उपस्थित है। उनके सात नवगीत संग्रह ही प्रकाशित नहीं हुए हैं वरन् 'समकालीन गीतिकाव्य : संवेदना और शिल्प' जैसे विषय पर शोध कार्य करके उन्होंने डी.लिट् की उपाधि भी प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त 'नवगीत : नए संदर्भ' एवं 'नवगीत कोश' जैसी उत्कृष्ट समीक्षात्मक कृतियाँ भी उनके गीतधर्मा होने की साक्षी हैं। यही कारण है कि डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद में उनके गीतों पर शोध कार्य करके दो शोधार्थी पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। नवगीतकार और नवगीत समीक्षक होने के अतिरिक्त वे बहुमुखी प्रतिभा के बहुआयामी रचनाकार भी हैं, इस दिशा में कम ही लोगों का ध्यान गया है। उनके पाँच दोहा संग्रह, दो मुक्तक संग्रह, एक-एक हाइकु, जनक और कुण्डलिया संग्रह तथा एक सजल संग्रह भी प्रकाशित है। दोहा पर उनका असाधारण अधिकार है। भाषा की सामासिकता, कथन की चमत्कारिकता, वक्रोक्ति विधान आदि से युक्त और कुल 48 मात्रा के दोहा छंद को काव्य जगत का वामन-विराट कहा जा सकता है। मंत्र के कार्य का और सूत्र की जाति का यह छंद कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ व्यंजना करता है। दोग्धक, द्विपदिक, दोहक, दोहरा आदि अनेक नामों से विभूषित दोहा छंद भाषाई कसावट, उक्ति वैचित्र्य और अर्थ दीप्ति में अपना प्रतिद्वंदी नहीं रखता। रहीम ने इसके संबंध में कहा है-

दीरघ दोहा अर्थ के, आखर थोरे आहिं।

ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिटि कूदि चलि जाहिं।। (रहीम रचनावली-संपादक डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र पृष्ठ-65)

दोहा के इस मर्म को डॉ. यायावर भली प्रकार जानते भी हैं और अपने रचना धर्म में उसे अपनाते भी हैं। इसीलिए काव्य क्षेत्र में नवगीत के बाद उनके सर्वाधिक संग्रह दोहा छंद के ही हैं। उनके दोहे विविध विषयों पर हैं। किसी एक संवेदना पर वे असंख्य दोहे सरलता से लिख सकते हैं। मन को उन्मत्त करने वाला ऋतुराज बसंत, अधरों की मुस्कान छीन लेने वाला महानगर, लोकतंत्र का नाम लिखने वाली बंदूकें, मुल्ला, पंडित, मौलवी, संतों और महंतों से भी अधिक तत्वज्ञानी कबीर, पर्यावरण और मानवता के लिए अभिशाप बना हुआ प्रदूषण, बचपन बेचकर चाकू खरीदते हुए बच्चे, प्रतीक्षा करती हुई व्याकुल

आँखें, पूरे न होने वाले उदास सपने, राजाओं द्वारा अपने पूर्वजों की पालकी ढोने का गर्व पालने वाला कवि, शातिर मौसम जैसे अनेक विषयों की संवेदना, तरलता और भाषा की सामासिकता में ढल कर डॉ. यायावर के दोहों का आकार लेकर अवतरित हुई है। वे जब...

मेरे मरने पर किया, प्रकट जिन्होंने खेद।

उनके चाकू से मरा, खुला न अब तक भेद।। (आँसू का अनुवाद-डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ-21)

...लिखते हैं तो आधुनिक जीवन की विद्रूपता, मानव की हिंसक वृत्ति, चारित्रिक पतन और कृत्रिमता जैसे साकार होकर बिम्बित हो जाती है। लोक जीवन और लोक संस्कृति के प्रति डॉ. यायावर का गहरा अनुराग है। उन्हें लगता है कि पगडंडियों की सहजता, लोकगीतों की मिठास, पनघट का चुलबुलापन, अलावों की सामाजिकता, संस्कारों की पावनता और आपसी संबंधों की मधुरता को महानगरों ने चर लिया है। इसीलिए वे कहते हैं...

घूँघट मेंहदी कंठ स्वर, करुणा मोह उछाह।

महानगर में बिक गए, दर्द, प्रेम और चाह।।

खेत गैल खलिहान वन, उपवन और सहेट।

निगल गया सबको यहाँ, महानगर का पेट।। (वही, पृष्ठ-20)

डॉ. यायावर के दोहों में सरसता चिंतन की गहनता, मौलिकता और अर्थ की व्याप्ति पर्याप्त मात्रा में मिलती है। उनका एक दोहा संग्रह रामकथा पात्रामृतम है। इस संग्रह में रामकथा के 65 पात्रों पर 11-11 दोहे और कुछ गौण पात्रों पर दो-दो दोहे हैं। इन दोहों में रामकथा के औदात्य, पात्रों के चारित्रिक स्वरूप और भाव जगत की रक्षा करते हुए आधुनिकता के मौलिक संदर्भों को भी जोड़ा गया है। रामकथा मानवता के लिए अभय हस्त रचती है। राम धर्म का विग्रह, मूल्यों का पूँजीभूत स्वरूप, शील, सौंदर्य और शक्ति का समन्वय, इतिहास, नीति, विज्ञान और दर्शन का साकार स्वरूप हैं। इसलिए सांगरूपक का आश्रय लेकर डॉ. यायावर राम से विनम्र प्रार्थना करते हैं...

तन निषाद टेरे तुम्हें, मन सुतीक्ष्ण अभिराम।

पल-पल यह शबरी तृषा, रटे तुम्हारा नाम।। (रामकथा पात्रामृतम-डॉ. राम सनेही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ-12)

आदि कवि वाल्मीकि से लेकर आज तक राम कथा प्रसंग पर कवियों ने अपनी लेखनी चलाई है। वस्तुतः हर युग ने राम कथा के माध्यम से अपनी युगीन समस्याओं का समाधान खोजा और पाया है। इसलिए उस क्षेत्र में कुछ मौलिक सृजन करना दुष्कर कार्य है। परंतु डॉ. यायावर ने यह दुष्कर कार्य भी संपन्न किया है। उदाहरणार्थ शूर्पणखा रामकथा का गर्हित पात्र है। उसे राम भक्तों की घृणा ही मिली है। वह वासना का प्रतिरूप है। परंतु डॉ. यायावर ने इस गर्हित पात्र के माध्यम से आधुनिक नारी विमर्श को स्वर दिया है। शूर्पणखा ने रावण की इच्छा के बिना घर से भागकर विद्युज्जिह कालिकेय से विवाह किया था। रावण इस विवाह के विरुद्ध था। उसने विद्युज्जिह को मार दिया। इसलिए शूर्पणखा कहती है...

विधवा करता एक है, दूजा अपयश धाम।

नारी को सब एक से, रावण हो या राम।। (वही, पृष्ठ-132-33)

इसी तरह लोकोपवाद के भय से जब राम गर्भवती सीता को वनवास दे देते हैं तो डॉ. यायावर का हृदय विचलित होता है और वे किसी पात्र के माध्यम से इस कार्य के लिए राम की घर्षणा करना चाहते हैं। इसलिए वे माता कौशल्या के माध्यम से यह कार्य संपन्न कराते हैं। माँ कौशल्या कहती हैं...

सूर्यवंश बट पौध का, लिए कोख में भार।

भटके मेरी जानकी, राम तुम्हें धिक्कार।। (वही, पृष्ठ-25)

इस संग्रह के दोहों में शिव का आशुतोषत्व, पार्वती की चट्टान सी दृढ़ता, कैकेई का पश्चाताप, भरत के चरित्र की शुचिता, मांडवी और उर्मिला का त्याग, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का अपराजेय पौरुष, जनक की निष्काम भक्ति, दंडकारण्य का कर्मकांड, रामसेतु की जन सहभागिता, नारद का यायावरी मन, परशुराम का प्रज्ज्वलित पौरुष, हनुमान की दृढ़ता, जटायु का उद्दाम पौरुष, तारा का निर्मल विवेक, रावण का प्रचंड अहम, मेघनाद का राष्ट्रीय भाव, आदि के साथ-साथ सब में कोई न कोई मौलिक चिंतन अवश्य पिरोया गया है।

डॉ. यायावर के तीन दोहा संग्रह एक ही श्रेणी में रखे जा सकते हैं- 1. राम नाम अभिराम 2.श्याम नाम सुखधाम 3. शिवो भूत्वा शिवम यजेत्। नामों से ही स्पष्ट है कि ये तीनों संग्रह क्रमशः राम, कृष्ण और शिव भक्ति से सम्बद्ध हैं परंतु इस भक्ति में भी कवि का राष्ट्रबोध, सांस्कृतिक चिंतन और लोक कल्याण सर्वोपरि रहा है। उदाहरणार्थ राम भक्ति के दो दोहे देखें...

जब जब मेरे राष्ट्र का, डिगा आत्मविश्वास।

तब-तब लेकर राम का, नाम उठा इतिहास।।

यदि नारी सम्मान को, जूझे प्राण पुनीत।

तब जटायु सी मौत भी, बन जाती है जीत।। (राम नाम अभिराम-डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ-60/475)

स्पष्टतः यहाँ पहले दोहे में राम नाम के व्यापक प्रभाव और दूसरे दोहे में नारी सम्मान के लिए अपने प्राण विसर्जित करने की प्रेरणा प्रकट है। यह दोहे भक्तिकालीन विनय के दोहों से भिन्न, नूतन संवेदना प्रकट करने वाले हैं। कृष्ण को पूर्णावतार कहा गया है। उन्होंने जीवन में जो कुछ किया, वह पूर्णता के साथ किया। वंशी का विश्वमोहक संगीत, राधा के प्रति चरमावस्था तक पहुँचा हुआ प्रेम, जरासंध के साथ युद्ध में प्रकट किया गया शौर्य, कुरुक्षेत्र में दिया गया गीता ज्ञान और शकुनि की षड्यंत्रकारी चालों को काटने के लिए किए गए कूटनीतिक प्रयास चरमावस्था तक पहुँचे हुए हैं। उन्होंने जीवनभर प्रतिमान गढ़ने का काम किया है। इसलिए डॉ. यायावर कहते हैं...

कर्म सिखाया कर्म को, दिया ज्ञान को ज्ञान।

जीवन भर गढ़ते रहे, जीवन के प्रतिमान।। (श्याम नाम सुखधाम-डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ-47/346)

दोहा के प्रति डॉ. यायावर के आकर्षण को इस तथ्य से समझा जा सकता है कि उन्होंने गीता का अनुवाद संपन्न किया है। उनके गीता दोहानुवाद में मूल अर्थ के निकट रहते हुए सरल भाषा में गीता के

तत्वार्थ को प्रकट किया गया है। इस संदर्भ में एक दोहा दृष्टव्य है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुभूर्मा तेसाङ् गोऽस्त्वकर्मणि।
फल तेरा अधिकार कब? मात्र कर्म ही धर्म।
हेतु कर्मफल बन न रख, अनासक्ति निज कर्म।। (गीता : दोहानुवाद- डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ-36/47)

हिंदी में जापानी छंद हाइकु की स्वीकृति और लोकप्रियता बढ़ने पर हिंदी कवियों के मन में त्रिपदी छंदों की ओर ध्यान गया। संस्कृत में त्रिपदिक छंद हैं। पंजाबी में माहिया भी त्रिपदिक है परंतु हिंदी में इनका अभाव है। ऐसी स्थिति में हिंदी कवियों का ध्यान दोहे की ओर ही गया और दोहे के पहले, तीसरे या दूसरे, चौथे चरणों की तीन आवृत्तियों से कई छंद आविष्कृत किए गए। इन्हीं नए छंदों में जनक छंद का विशेष महत्व है। दोहा के विषम चरणों की तीन आवृत्तियों से बना यह छंद कुल 39 मात्राओं का है। इसमें साधारणतया प्रथम और तृतीय पंक्ति में तुकांत लाए जाते हैं। डॉ. यायावर ने जनक छंदों की भी रचना की है। उनका एक संग्रह 'जनक : नए युग का जनक' इस तथ्य का प्रमाण है। एक जनक छंद दृष्टव्य है-

संयम कहाँ स्वतंत्र है
घूम रहा ऋतुराज ले
सम्मोहन के मंत्र है-(जनक : नए युग का जनक- डॉ. राम सनेही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ-25/32)

वस्तुत: जनक, दोहा परिवार का ही छंद है। इसी तरह कुंडलियाँ भी दोहा परिवार का छंद है। कुंडलियाँ में एक दोहा और एक रोला को जोड़कर 6 पंक्तियाँ होती हैं। प्रथम शब्द या शब्द समूह से ही छंद का समापन किया जाता है। डॉ. यायावर ने विपुल मात्रा में कुंडलियों का सृजन किया है। उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने कुंडलियाँ जैसे पारंपरिक छंद में आधुनिक जीवन की विसंगतियों, जटिल यथार्थ, मूल्य संक्रमण, अनास्था और मानवीय पीड़ा जैसे विषयों को कुंडलियों के कलेवर में बाँधा है। उदाहरण के लिए वे ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में भी जीवन के यथार्थ को किस तरह बाँधते हैं, निम्नलिखित कुंडलियाँ में यह देखा जा सकता है...

मँहगाई सी दोपहर, सदाचार से प्रात।
घोटालों से दिन हुए, नीति वाक्य सी रात।।
नीति वाक्य सी रात, भूमि सब लगती बंध्या।
नेताओं के शिथिल, आचरण जैसी संध्या।।
नई बहू खा आम, कर रही है उबकाई।
बढ़ी सास की खुशी, बढ़ रही ज्यों मँहगाई।। (संबंधों की नाव-डॉ. राम सनेही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ-53/4)

भारतीय काव्यशास्त्र में पूर्वापर संबंध से मुक्त, प्रसंग निरपेक्ष स्वतंत्र काव्य को मुक्तक कहा गया है। इस दृष्टि से महाकाव्य और खंडकाव्य को छोड़कर सभी काव्य विधाएँ मुक्तक के अंतर्गत समाहित हो जाएँगी। परंतु आधुनिक युग में उक्त शब्द का प्रयोग चतुष्पदी के अर्थ में होने लगा है। जो उर्दू की रुबाई से

प्रभावित है। अंतर यह है कि रुबाई 22-22 मात्रा के विधान की विधा है जबकि मुक्तक 8 मात्रा से लेकर 40 या उससे भी अधिक मात्रा में लिखा जा सकता है। इसकी संरचना में प्रथम तीन पंक्तियों में भूमिका बनाई जाती है और अंतिम पंक्ति में अर्थ का चमत्कारिक विस्फोट होता है। डॉ. यायावर के दो मुक्तक संग्रह बाँसुरी-बाँसुरी और पाँखुरी-पाँखुरी प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. यायावर के मुक्तक प्रभावशाली और अर्थदीप्ति की दृष्टि से परिपूर्ण हैं यथा-

जीवन की सूनी राहों पर एक पीर से आँख लड़ी थी।
सट कर चलती थी पर मेरी छाया मुझसे बहुत बड़ी थी।
मैं जब उसके घर पहुँचा तो भौंचक्का सा खड़ा रह गया,
मुझसे पहले मुझे ढूँढ़ने मंजिल घर से निकल पड़ी थी। (पाँखुरी-पाँखुरी- डॉ. राम सनेही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ-17-11)

यही नहीं उन्होंने अपने मुक्तक में प्रतीकों और मिथकों को भी बड़ी सार्थकता के साथ अभिव्यक्ति का उपादन बनाया है जैसे-

सदियों नहीं जिन्दगी कुछ ही क्षण होती है।
अगर बुद्धि दूषित हो तो रावण होती है।।
रत्ना जब गढ़ देती कोई दिव्य प्रेरणा।
तब तुलसी के हाथों रामायण होती है।। (बाँसुरी-बाँसुरी पृष्ठ-65/1)

डॉ. यायावर के मुक्तकों की विशेषता यह है कि वे अपने लघ्वाकार में भी बहुत कुछ सार्थक और उद्देश्यपूर्ण वक्रोक्तिमई भाषा में कह जाते हैं।

वर्तमान समय में हिंदी साहित्य में एक नई विधा के रूप में सजल ने अपना वर्चस्व स्थापित किया है। यह विधा यद्यपि उर्दू की एक चिर परिचित काव्य विधा ग़ज़ल के काफी हद तक समीप है किंतु सजल के जानकारों की मानें तो इस विधा का विकास भी दोहा से ही हुआ है। सजल विधान में दोहे की भाँति ही कम शब्दों में अधिक अर्थ देने की क्षमता विद्यमान है। सजल विधा के प्रादुर्भाव के दिनों से ही डॉ. यायावर का जुड़ाव रहा है। जिस प्रकार किसी नवीन कृति का प्रादुर्भाव होता है और समय के साथ उसके परिष्करण में परिवर्तन तथा परिमार्जन की स्थितियाँ समाहित होती हैं। उसी प्रकार इन सभी स्थितियों से सजल विधा भी गुजरी है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि सजल संग्रह के रूप में जो पुस्तक सर्वप्रथम प्रकाशित हुई वह डॉ. यायावर की कृति 'तृषा का आचमन' है। इस पुस्तक में डॉ. यायावर ने अपनी सजलों में राष्ट्र चेतना, मानवीय संबंध, आध्यात्मिक स्वर तथा मानवीय चेतना के स्वरों को बड़ी ही सुंदरता से पिरोया है। उदाहरणार्थ एक सजल का आदिक और एक पदिक देखें-

हर तरफ कोहरा घना है
सूर्य का आना मना है
दीप की जिद है जलेगा
आँधियों की गर्जना है-(तृषा का आचमन-डॉ. राम सनेही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ-79)

सजल ने हिंदी के उन रचनाकारों के लिए मार्ग प्रशस्त किया है जो उर्दू की ग़ज़ल की बहरों और

उनके शास्त्र से परिचित नहीं हैं। यह विशुद्ध हिंदी की विधा है। इसे स्थापित करने में डॉ. यायावर जी का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

हाइकु जापान की अत्यंत सूक्ष्म आकार की काव्य विधा है। इसे हिंदी में पूरी तरह से अपना लिया गया है। यह वर्णिक छंद है। इसमें 3 पदों में 5,7,5 वर्ण होते हैं। इस क्षेत्र में भी डॉ. यायावर जी का अतुलनीय योगदान रहा है। उनका एक हाइकु संग्रह 'काँधे पै घर' प्रकाशित है। उदाहरण के लिए उनका एक हाइकु देखें-

वे पैंतालीस
मेकअप में तीस
बतातीं बीस-(काँधे पै घर- डॉ. राम सनेही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ-69)

डॉ. यायावर के हाइकुओं की विशेषता यह है कि वे व्यंग्य, वक्रोक्ति, तुकांत विधान और सार्थक बात के साथ अपना आकार गढ़ते हैं। उनका दूसरा योगदान यह भी है कि उन्होंने हाइकुओं की रचना में मुक्तक और गीत भी लिखे हैं। एक मुक्तक दृष्टव्य है-

ग्रीष्म जलाता/सुख देता है यह/सावन घन।
सुख में हँसी/अश्रु हर दुख में/पाता है तन।
मिलन करें/उत्साहित मन को/पीड़ा हर के/
किंतु विरह/पानी-पानी करता/सबका मन। (वही, पृष्ठ-83/8)

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि डॉ. यायावर के गीतों, नवगीतों के ही समान गीतेतर काव्य भी अत्यधिक संपन्न है। उनके दोहों में कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति का विलक्षण समन्वय दिखाई पड़ता है। उनकी कुंडलियाँ परंपरा में रहकर परंपरा को अधिक्रमित करने का साहस दिखाती हैं। मुक्तक में वक्रोक्ति का वैभव है तो सजल में कथ्य की गंभीरता और मुक्तक की कहन का योग।

सम्पर्क : फिरोजाबाद (उ.प्र.)

अरुण कुमार शर्मा

अष्टछाप : भक्तिकाल का स्वर्ण युग

16वीं शताब्दी में भक्ति काव्य चरम सीमा पर था। ऐसे समय में गोस्वामी विट्ठलदास जी ने 'अष्ट छाप' की स्थापना की। विट्ठलदास जी के मंदिर में अनेक कृष्ण भक्त गायक थे जिनकी मधुर स्वर लहरियों से श्रोतागण का तनमन प्रफुल्लित हो उठता था। अष्टछाप की स्थापना कब हुई इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। अत: साक्ष्यों के आधार पर इसका स्थापना काल सम्वत् 1602 ई. माना गया है।

'अष्टछाप' भक्ति काल का कोई सम्प्रदाय अथवा धार्मिक विधान नहीं है। गोवर्धन के श्रीनाथ मंदिर में श्रीनाथ जी की आठ पहर सेवा की जाती थी। मंगल श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या, आरती, शयन। आचार्य विट्ठल ने इन आठों सेवाओं को सम्पन्न करने के लिये 'पुष्टि मार्ग' में दक्ष आठ भक्त कवियों को पुजारी के रूप में नियुक्त किया। सामूहिक रूप से इन्हीं भक्त कवियों को 'अष्टछाप' की संज्ञा दी गई। ये भक्त कवि न केवल श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन करते थे बल्कि अपनी कोमल-कान्त पदावली से भक्तजनों में भक्ति का भी संचार करते थे।

इन आठ कवियों में चार कवि तो बल्लभाचार्य शिष्य थे। जिनके नाम थे सूरदास, कुम्भन दास, कृष्णदास, परमानन्द दास। चार विट्ठल दास जी के शिष्य थे नन्ददास, चतुर्भुज दास, छीत स्वामी और गोविन्द स्वामी। श्री हरि प्रसाद नायक ने 'अष्टछाप' का स्थापना काल सम्वत् 1646 या (1589 ई.) माना है। अष्टछाप की नाम तालिका का एक दोहा प्रसिद्ध है-

कृष्ण जु कुम्भनदास हैं, सूरहि परमानन्द।
नंद चतुर्भुज जु, छीत स्वामी गोविन्द।।

काव्य सौन्दर्य के अनुसार 'अष्टछाप' के भक्त महाकवियों का परिचय संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत है-

1. सूरदास : अष्टछाप के प्रमुख कवियों में शिरोमणि सूरदास का नाम सबसे पहले आता है। इनका जन्म, सम्वत् 1537 में बैसाख शुक्ल पंचमी को दिल्ली के समीप सीही नामक स्थान पर हुआ। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रामदास गवैया बताया जाता है। इन्होंने लगभग 25 ग्रन्थों की रचना की। उनमें 'सूरसागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी, सूर पञ्चीली, सूर रामायण, सूरसाठी और राधा रस केलि ही प्रकाशित हैं। सूर द्वारा रचित पदों की संख्या लगभग सवा लाख बताई जाती है। यद्यपि आजकल पाँच, छ: हजार ही पद उपलब्ध हैं। इसमें कृष्ण की बाल लीला से लेकर गोपियों के विरह तक की कथा फुटकल पदों में कही गई है। ये सभी पद गेय हैं और इतने मर्मस्पर्शी हैं कि अरसिक को भी एक बार

रसलीन कर देते हैं। सूरदास की ख्याति का कारण यही एक मात्र 'सूरसागर' ग्रन्थ है। 'साहित्य लहरी' में 118 दृष्ट कूट पदों का संग्रह है। ऐसा माना जाता है कि सूरदास भक्त होने से पहले किसी स्त्री पर मुग्ध थे और उसी कारण से उन्होंने अपनी आँखें फोड़ ली थीं। इनका निधन 105 वर्ष की आयु में सम्वत् 1640 में गोवर्धन के पास 'पारसौली' नामक गाँव में हुआ।'

2. नन्ददास : महाकवि सूरदास के बाद नन्ददास अष्टछाप कवियों में दूसरे नम्बर पर आते हैं। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में इन्हें तुलसीदास का भाई कहा गया है परन्तु अब यहाँ सिद्ध हो चुका है कि इनका तुलसीदास से कोई सम्बन्ध न था। इनके गुरु विट्ठल थे। नन्ददास जी के निम्नलिखित ग्रन्थ हैं-

1. रास पञ्चाध्यायी 2.भागवत दशम स्कन्ध 3. रुक्मिणी मंगल 4. सिद्धान्त पञ्चाध्यायी 5. रूप मंजरी 6. रस मंजरी 7. मान मंजरी 8. विरह मंजरी 9. नाम चिन्तामणि माला 10. अनेकार्थ मञ्जरी 11. दान लीला 12. मान लीला 13. अनेकार्थनाम माला 14. ज्ञान मंजरी 15. श्याम सगाई 16. भँवर गीत 17. सुदामा चरित 18. हितोपदेश 19. नासिकेत पुराण।

इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'रास पंचाध्यायी' है जो रोला छन्द में लिखी गई है। इसमें कृष्ण की रास लीला का अनुप्रासादि युक्त साहित्यिक भाषा में विस्तार से वर्णन किया गया है। 'भँवर गीत' इनकी दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक है जिसमें भ्रमर गीत परम्परा के 75 छन्दों में रचित सुन्दर कृति को प्रबन्धात्मक रूप दिया गया है।

3. कृष्णदास : इनका कविता काल विक्रमी सम्वत् 1600 के पीछे माना जाता है। ये शूद्र जाति के थे और बल्लभाचार्य के शिष्य तथा बड़े कृपापात्र थे। बल्लभाचार्य ने इन्हें श्रीनाथ मन्दिर का प्रधान मुखिया नियुक्त किया था। इन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम को लेकर शृंगार रस के ही पद गाये हैं। कृष्णदास ने तीन ग्रन्थों की रचना की। जुगलमान चरित्र, भ्रमर गीत, प्रेम तत्व निरूपण। सूरदास एवं नन्ददास के सामने इनकी काव्य कला साधारण कोटि की ही मानी जाती है।

4. परमानन्ददास : यह बल्लभाचार्य के शिष्य और कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। यह कन्नौज के रहने वाले थे। इनकी काव्य रचनाओं में हृदय की तन्मयता और भाषा की सरलता मिलती है। बल्लभाचार्य जी इनके पदों को सुनकर तन-मन की सुध भूल जाते थे। परमानन्ददास जी के कृष्ण भक्ति सम्बन्धी फुटकल पद मिलते हैं जो 'परमानन्द सागर' में संकलित हैं।

5. कुम्भनदास : 'अष्टछाप' के पाँचवें कवि कुम्भनदास थे। ये पूर्ण विरक्त एवं धनमान की मर्यादा की इच्छा से कोसों दूर थे। ये बल्लभाचार्य के शिष्य थे। एक बार अकबर के बुलाने पर इन्हें फतहपुर सीकरी जाना पड़ा था। जहाँ इनका बड़ा आदर सत्कार हुआ पर इसका इन्हें बराबर दु:ख सताता रहा। इनका कोई ग्रन्थ नहीं परन्तु फुटकल पद अवश्य मिलते हैं जिनमें कृष्ण की बाल लीला और प्रेम लीला का वर्णन है।

6. चतुर्भुजदास : 'अष्टछाप' के छठे कवि के रूप में चतुर्भुजदास का नाम आता है। ये विट्ठल के शिष्य एवं कुम्भनदास के पुत्र थे। इनके तीन ग्रन्थ मिलते हैं- 1. द्वादश यश, 2. भक्ति प्रताप 3. हितजू को मंगल।

7. छीत स्वामी : ये आचार्य विट्ठल के शिष्य और मथुरा के सम्पन्न पण्डा थे। राजा बीरबल जैसे

व्यक्ति इनके यजमान थे। पहले ये बड़े अख्खड़ और उद्दण्ड थे परन्तु विट्ठल नाथ से दीक्षा लेकर ये परम शान्त स्वभाव के बन गये। डॉ. सुरेशचन्द निर्मल ने इनके पदों की संख्या 210 के लगभग बताई है।

8. गोविन्द स्वामी : ये आचार्य विट्ठल के शिष्य और अन्तरी के रहने वाले धनाढ्य ब्राह्मण थे। ये विरक्त होकर महावन में रहने लगे थे। ये कवि होने के अतिरिक्त गवैये भी थे। तानसेन भी इनका गाना सुनने के लिये कभी-कभी गोवर्धन आया करते थे। इनके लिखे लगभग 576 फुटकल पद प्राप्त होते हैं।

मुख्यत: 'अष्टछाप' कवि श्री कृष्ण की भक्ति में पद रचना करते थे। सूरदास जिन्हें भक्तिकाल का सूर्य भी कहा जाता है। उनकी बाल-लीला, वात्सल्य-रस बेजोड़ हैं। श्री कृष्ण का बाल वर्णन करते हुये वे किस तरह का दृश्य प्रस्तुत करते हैं-

चरन गहे अँगूठा मुख मेलत।
नन्द धरनि गावति, हलरावति/पलना पर हरि खेलत।
जे चरनारविन्द श्री-भूषण/उर तै नेकु न टारति।
देखौं धौ रस चरननि मैं /मुख मेलत करि आरति
जो चरनारविन्द कै, रस है गेहूँ को दुरलभ
तातै लेत सवाद।

एक स्थान पर उद्धव ब्रज से लौटने पर कृष्ण के पूछने पर ब्रजवासियों की दशा का वर्णन करते हुये कहते हैं।

व्रज के विरहि लोग दुखारें।
बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े/अति दुर्बल तन कारे।
नन्द जसोदा मारग जोवति/निसिदिन साँझ सकारे।
चहुँ दिसि कान्ह कान्ह कहि टेरत/अँसुवन बहत पनारे।।

कृष्ण काव्य का वास्तविक विकास सूरदास के काव्य से हुआ। कृष्ण भक्ति को लेकर पुष्टि मार्गी शाखा चलाने वाले विष्णु स्वामी, माधवाचार्य, तथा बल्लभाचार्य आदि हैं। ये पुष्टि मार्गी शुद्ध अद्वैतवादी या अविकृत परिणामवादी कहलाते हैं। इस शाखा के कवि सूर तथा अष्टछाप के कवि हैं। इन कृष्ण कवियों ने प्रेम का ऐसा व्यापक वर्णन किया जिसकी समानता आज तक भी कोई कवि न कर पाया। इन 'अष्टछाप' कवियों में संकीर्णता की मात्रा बहुत अधिक थी। इनका विचार था कि कृष्ण के अतिरिक्त और कोई देवी, देवता अच्छा नहीं। 'अष्टछाप' के कवियों में माधुर्य की भावना है। जैसे परमानन्द का एक पद दृष्टव्य है-

कहा करौ वैकुण्ठहि जाय?
जहँ नहिं नन्द जहाँ न जसोदा/नहिं जहँ गोपी ग्वाल न गाय,
जहँ नहिं जल जमुना को निर्मल/और नहिं कदमन की छाँय
परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी/व्रज रज तजि मेरी जाय बलाय।।

अष्टछाप के कवियों ने युक्त काव्य को अपनाया। व्रज भाषा को विशेष रूप से विकसित किया। अष्टछाप के कवि हिन्दी साहित्य रूपी आकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। जिनका प्रभाव अक्षुण्ण रहेगा।

संपर्क : शिमला (हि.प्र.)

डॉ. दादूराम शर्मा

चातक

चातक (पपीहा) की ''पी कहाँ? पी कहाँ'' की अनवरत-अविश्रान्त आशाभरी करुण पुकार से आज प्रभात में मेरी आँखें खुली हैं। चार-पाँच दिनों से पूरे दिन उसकी ''पी कहाँ? पी कहाँ'' की एक तार रटन बार-बार मेरी दृष्टि को आकाश की ओर उठाती रही है किन्तु कहीं भी कोई बादल का टुकड़ा-मेघखण्ड नजर नहीं आ रहा! बारीकी से ढूँढ़ने पर भी नहीं! अरे! आज तो महूका भी 'गुग्गूँ-गुग्गूँ' बोल रहा है। बचपन में मेरे पिताजी बताया करते थे- ''बेटा! यह बादामी-सुनहरे रंग का हल्के काले, लम्बे पंखों की पूँछ वाला यह बड़ा पक्षी जब बोलता है तो बादल जरूर बरसते हैं। इसका बोलना वर्षा होने का शुभ शगुन है, वर्षा की पूर्व सूचना होता है। इसकी छठीं इन्द्रिय को, चाहे आकाश में कई दिनों से दूर-दूर तक कहीं भी बादल के चिह्न भी नजर न आ रहे हों, फिर भी जल्दी ही वर्षा होने का पूर्वाभास हो जाता है। इसका उल्लास भरा स्वर आने वाली वर्षा का शगुन है, उसका पूर्वाभास है!''

नित्य क्रिया से निवृत्त होकर मैं चातक की करुण पुकार और महूके के उल्लास भरे स्वरों को सुनता हुआ प्रभात भ्रमण के लिए निकल पड़ा हूँ। सुबह-सुबह ही तो हवा में शीतलता आ पाती है। 'नवतपा' को बीते एक हफ्ता हो गया फिर भी चण्ड तपन (सूर्य) की किरणें सुबह नौ बजे से ही यथावत् अंगारे बरसाने लगती हैं। भूमि भाड़-सी जलने लगती है! दोपहर होते-होते तो अपने आप संचाररोधादेश (कर्फ्यू) लग जाता है। सभी प्राणी जहाँ-तहाँ दुबक जाते हैं।

चातक को तो वर्षा का पूर्वाभास नहीं होता। होता तो अब तक वर्षा न हो जाती! सुना है, यह स्वाती नक्षत्र में ही अपनी खुली चोंच में मेघ से झरने वाली बूँदों को ससम्मान शान से लेकर अपनी प्यास बुझाता है। फिर अभी तो आषाढ़ लगने को भी चार दिन बाकी हैं और स्वाती नक्षत्र तो बरसात के अंतिम दिनों में आता है फिर क्यों असमय क्रन्दन कर रहा है यह चातक? आज तो महूके का स्वर-सान्निध्य पाकर इसकी आवाज में और भी कशिश, और भी करुणा आ गई है, जैसे यह अपने जीवन-दाता जलद को पुकार-पुकार कर याद दिला रहा है कि ''प्यारे आओ, तुरंत आओ, आ भी तो जाओ और असहनीय धूप और लू से झुलसकर मरणासन्न पड़ी धरती पर अमृत की वर्षा कर दो, चर-अचर सभी को नवजीवन देकर निहाल कर दो! मेरे प्रियतम! तुम मेरे ही नहीं, समस्त चराचर जगत् के जीवनाधार हो। तुम्हारी यह उदासीनता अच्छी नहीं। देखो तो- जरा सुनो तो यह महूका भी तुम्हें पुकार रहा है। उसकी सगनौती तो

सच्ची कर दो! बरस जाओ, जल्दी बरस जाओ, अब तो बरस ही जाओ न!

उसकी पुकार साकार हो रही है। महूका का शकुन सत्य सिद्ध हो रहा है। मेघखण्ड क्षितिज में दिखने लगे हैं। देखो, ये धीरे-धीरे सारे आकाश में छाने भी लगे हैं। और लो, अब तो ये बरसने भी लगे हैं। अहा! सारी धरती नहाकर शीतल पवन के झकोरों सी झूमने लगी है।

कवि प्रसिद्धि है कि चातक केवल स्वाती का जल ही पीता है। यदि स्वाती में मेघ न बरसें तो वह फिर सालभर प्यासा रहकर अगले वर्ष के स्वाती नक्षत्र की प्रतीक्षा करते रहता है। स्वाती का जल बरसे भी तो यह चोंच खोलकर बैठ जाता है। बूँदें सीधे उसके चंचुपुट में गिरती हैं तो पी लेता है। तिरछी गिरती हुई बूँदों को वह लपककर चोंच में नहीं लेता! प्यास से मरने भी लगे तो भी साधारण जलाशय का जल तो वह पी ही नहीं सकता, गंगा जल भी नहीं पीता! तुलसी ने लिखा है-

''बध्यो बधिक, पर्यो पुण्यजल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक-प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच।। -(दोहावली 302)

उसने मरते समय गंगा जल की बूँद को भी, जिसके बारे में कहते हैं कि मरने वाले के मुँह में गंगा जल डाल दो तो उसके प्राण सुखपूर्वक निकल जाते हैं और उसे मुक्ति मिल जाती है, अपने मुँह में नहीं जाने दी! वह अनन्य प्रेमी है। प्रिय मेघ पर-घनश्याम पर उसका विश्वास अटल है, उसी का उसे बल है। वह एकमात्र उसी से आशा करता है उसी से याचना करता है, किसी और से नहीं। तुलसी को भी अपने घनश्याम राम पर अटल विश्वास था, दृढ़ आस्था थी, वह आशा करता था तो केवल राम से और याचना भी करता था तो केवल राम से- उस राम से, जिससे याचना करने पर याचकता ही समाप्त हो जाती है, वह इतना दे देता है कि फिर किसी और से क्या उससे भी माँगने की जरूरत ही नहीं रह जाती क्योंकि याचक पूर्णकाम हो जाता है और उसकी याचकवृत्ति ही जल जाती है, समूल नष्ट हो जाती है! रमणीयता की तरह प्रेम भी, यदि वह एकनिष्ठ और सच्चा है तो प्रतिक्षण नवीन और नित्य वर्धनशील (वधिष्णु) होता है- क्षणे-क्षणे तन्वतांमुपैति। प्रियतम का नाम रटते-रटते चाहे चातक की जीभ लट जाए, सूख जाए, मोटी होकर बोलने की क्षमता ही खो दे और सारे अंग प्यास से व्याकुल होकर निश्चेष्ट हो जाएँ फिर भी उसका प्रेम नित्य नूतन और रुचिर होता जाता है-

''रटत-रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग।। -(दोहावली 280)

मेघ चातक को स्वाती का जल दे या न दे, समय पर बरसे या न भी बरसे-उसके जीवन पर्यन्त उदासीन ही क्यों न बना रहे तो भी मृत्यु पर्यन्त उसे उसकी ही आशा रहती है! कैसा हृदयहारी भाव है-

''जौं घन बरसै समय सिर या भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि, तऊ तिहारी आस।।

चातक स्वाभिमानी है। वह माँगता भी है तो शान से और वह भी एक मात्र स्वाती का ही जल और लेता भी है तो शान से! दैन्य उसके स्वभाव में नहीं। उसमें प्रेम तो है, वह याचक भी है पर दीन नहीं। उसके स्वभाव में ही दीनता नहीं है। वह अपने एकमात्र आराध्य, एक मात्र दाता मेघ के सम्मुख भी नतमस्तक नहीं होता, करुण स्वर में रिरियाता नहीं कि ''मैं प्यास से मर रहा हूँ। हे प्रियतम जलद! मेरे

चंचुपुट में कृपया अपने स्वाती के अमृत बिन्दु डाल दीजिए।'' मेघ स्वाती के जल सीकर बरसाता भी है तो बिना सिर झुकाए, शान से, धीरज से चंचुपुट में लेता है, लपककर झपटकर नहीं लेता! वह अपने प्रिय से कहता है- ''डालना है तो प्रेमपूर्वक ससम्मान मेरे विवृत (खुले) चंचुपुट में डालो अन्यथा चलते बनो!''

वह स्वार्थी नहीं। माँगता है तो सारे संसार के लिए माँगता है, केवल अपने लिए नहीं माँगता। वह प्रिय पर अपना एकाधिकार भी नहीं जताता क्योंकि वह जानता है उसका प्रियतम जलद जगजीवनदाता है। यदि वह अपने जीवनदाता के प्रदेय (जलदान) से वंचित रह जाता है-यदि मेघ समग्र धरती को जल प्लावित कर देता है किन्तु चातक को प्यासा ही छोड़ देता है तो भी वह अपने परोपकारी प्रिय की जय-जयकार करते थकता नहीं, हम मनुष्यों की तरह वह उसे वंचित करके सभी को दे देने वाले के प्रति रोष प्रकट नहीं करता और न ही उससे लेकर अपना पात्र भर लेने वालों से उसे ईर्ष्या ही होती है। वह भविष्य के लिए समेटकर-सहेजकर रख लेने वाला परिग्रही नहीं, नितांत अपरिग्रही है। वह दूसरे पल की भी चिन्ता नहीं करता। संसार के अन्य प्राणी भी अनागत की चिन्ता से मुक्त हैं। वे वर्तमान को जी भरकर जीते हैं। जो मिला है, उसका भरपूर आनंद लेते हैं। किन्तु, मनुष्य कितना दयनीय है! जो भविष्य की चिन्ता में, अपनी ही नहीं, अपनों की भी चिन्ता में अपने वर्तमान की बलि चढ़ाते रहता है! तब उसे जो नहीं मिला है, वह तो मिलने से रहा? जो मिला है, उसे भी वह खो देता है, घनानंद के चिर वियोगी की तरह, जिसे दैव वशात् (तकदीर या संयोग से) संयोग सुख मिला भी तो भावी वियोग की आशंका, फिर बिछड़ जाने की चिन्ता या विभीषिका उसे मारे डालती है और वह अपने वर्तमान संयोग सुख से भी हाथ धो बैठता है-

''अनोखी हिल दैया! बिछुरे तौ मिल्यो चाहै, मिलोहू पै मारै जारै खरक बिछोह की!''

चातक अद्वितीय (एक मात्र) याचक है और बादल भी एक ही दानी है। दानी मेघ जब-जब बरसता है तो वह चातक की प्यास तो बुझाता ही है, अपना समस्त जलकोष लुटाकर धरती का भाजन-नदी-नद, कुएँ-बावड़ी, पोखर-तालाब आदि समस्त जलसंग्रहण स्थलों को लबालब भर देता है और स्वयं जलरहित होकर अकिंचन बन जाता है- एक (मेघ) देता है तो अपना सब कुछ लुटा देता है, अपने पास कुछ भी बचाकर नहीं रखता, सब कुछ देकर रिक्तहस्त (खाली) हो जाता है और दूसरा (चातक) बरसती अनन्त जलराशि में से लेता भी है तो अपनी प्यास बुझाने के लिए सिर्फ एक घूँट पानी, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं-

''तुलसी चातक माँगनो, एक-एक घन दानि।
देत जो भू-भाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि।।-दोहा 287

ऐसे ही अद्वितीय-अनुपम दानी महाराज रघु और याचक वरतंतु-शिष्य कौत्स की यशोगाथा महाकवि कालिदास के 'रघुवंश महाकाव्य' में अंकित है। महाराज रघु ने सर्वस्व दक्षिण (जिसमें सब कुछ दान कर दिया जाता है) विश्वजित यज्ञ किया था। तभी अपने गुरु महर्षि वरतन्तु से विद्या अर्जित करके गुरु दक्षिणा में उन्हें दी जाने वाली चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की याचना लेकर वे रघु के पास गए। रघु ने मृतिका पात्र में अर्घ्य देकर उनकी पूजा की और उनसे आने का प्रयोजन बताने का निवेदन किया। कौत्स बोले- ''राजन्! मैंने अपने गुरु कुलपति वरतन्तु को गुरुदक्षिणा में चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ देने का

संकल्प किया है। उसी की याचना लेकर आपके पास आया था किन्तु आप तो विश्वजित् यज्ञ में अपना सर्वस्व दान करके अकिंचन हो गए हैं तब मैं आपसे क्या माँगूँ?'' राजा ने हाथ जोड़कर निवेदन किया- ''भगवन्! मेरे यहाँ से खाली हाथ लौटकर आप अन्य दाता के पास जाएँगे तो मैं इस अपकीर्ति को, ऐसी लोक निंदा को कैसे सह पाऊँगा कि ''धिक्कार है सूर्यवंशी रघु को, जिसके पास से कौत्स जैसे गुरुभक्त विद्या में पारंगत याचक को खाली हाथ लौटकर किसी और दाता के पास जाना पड़ा! अत: कृपया दो-तीन दिन मेरे आतिथ्य में प्रतीक्षा कीजिए तब तक मैं आपकी गुरुदक्षिणा की राशि की व्यवस्था करता हूँ।'' कहकर उन्होंने वांछित धन के लिए देवताओं के धनाध्यक्ष कुबेर पर दूसरे दिन प्रात:काल चढ़ाई करके धन लाने की योजना बनाई किन्तु, कुबेर ने रातों-रात उनका कोषागार स्वर्ण मुद्राओं से भर दिया! दूसरे दिन सुबह अयोध्या के नागरिकों ने श्रद्धागद्गद होकर आश्चर्य से देखा कि दाता रघु अपने खजाने में आई समस्त स्वर्ण मुद्राएँ देने पर तुले थे और अद्भुत याचक कौत्स अपने गुरु की दक्षिणा की चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं से एक भी स्वर्ण मुद्रा अधिक लेने को तैयार ही नहीं थे-

''जनस्य साकेत निवासिनस्तौ द्वावप्य भूतामभिनन्द्यसत्त्वौ।
गुरु प्रदेयाधिक नि:स्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकायादधिक प्रदश्च।।''

और रघु कौत्स को देने से बची समस्त स्वर्ण मुद्राओं को जन कल्याण में लगाकर फिर अकिंचन हो गए थे!

परम वन्दनीय हैं मेघ और रघु जैसे सब कुछ लुटा देने वाले दाता और धन्य है चातक और कौत्स जैसे परम नि:स्पृह अपरिग्रही याचक जिनकी अभ्यर्थना में कवि कुलगुरु कालिदास और कवि चक्र चूड़ामणि तुलसीदास की वाणी मुखरित हो उठी है!

अपना सब कुछ-राज्य, सुख-वैभव, मित्र-परिजन-त्याग कर भिक्षुक बने महान् चिन्तक कवि राजयोगी भर्तृहरि चातक (कवि-साहित्यकारों के समुदाय) को सभी मेघों के सामने अपना दैन्य प्रकट न करने (न रिरियाने), अपना स्वाभिमान-अपना आत्मसम्मान बनाए रखने की सलाह दे रहे हैं-

''रे रे चातक! सावधान मनसा मित्रं क्षणं श्रूयताम-
भोदा बहव: सन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशा:।
के चिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति के चिद् वृथा,
यं यं पश्यंति तस्य तस्य पुरत: मा ब्रूहि दीनं वच:।।'' - 'नीति शतक'

आज हम साहित्यकारों (कवियों, लेखकों आदि) में वह ''चातक वृत्ति'' कहाँ है? महाकवि भर्तृहरि ने तो हमें ''गजवृत्ति'' की भी सलाह दी थी कि भाई! पिण्डद (पुरस्कार, कृति की रायल्टी, रचना का पारिश्रमिक जिसे कोई-कोई सम्पादक 'मानदेय' कहकर सम्मान देते हैं रचनाधर्मी को!) के सामने भी तुम स्वाभिमान से तनकर खड़े रहो, वह खुशामद करे, प्रार्थना करे तब कहीं हाथी की तरह बिना झुके, बिना दैन्य दर्शाए, बिना कृतज्ञता ज्ञापित किए अपना अधिकार समझकर शान से लो, भीख की मानिंद झोली फैलाकर देने वालों की मेहरबानी के बतौर मत लो! ''श्वानवृत्ति'' मत स्वीकारो- कुत्ते की तरह दुम हिलाकर देने वाले के चरणों में लोटकर अपना मुँह और पेट दिखलाकर कुछ भी मत लो! अपने ''कुलव्रत- 'चातकत्व' और 'गजत्व'' को छोड़कर अपने कुल को कलंकित मत करो-देखो-

''लांगूल चालन मधश्चरणावपातं भूमौ निपत्यवदनोदर दर्शनं च।

श्वा पिण्डदस्य कुरूते गजपुंगवस्तु धीरं विलोकयनि चाटु शतैश्च भुंक्ते।।-'नीति शतक'

किन्तु उस परम लोक व्यवहार वेत्ता महाकवि की बात पहले भी कितनों ने सुनी थी और आज तो कोई भी नहीं सुन रहा!

मैं भी तो चातक अथवा गज के पथ का पथिक नहीं, श्वान मार्ग का पथिक हूँ। सम्पादकों को ''सेवा में'' के स्थान पर ''कर कमलों में'' लिखकर अपनी रचनाएँ भेजता नहीं, सौंपता हूँ। रिरियाता हूँ कि अपनी यशस्विनी पत्रिका में स्थान देकर मेरी लेखनी को धन्य करें-कृतार्थ करें! किन्तु सौ में से सत्तर तथाकथित नीर-क्षीर विवेकी हंस (संत सम्पादक) स्वयंभू ऋषि आसाराम की तरह मुझ भक्त के विनयावनत मस्तक पर पैर से ठोकर मारते हैं। 2007 में हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद से अपने व्यय पर मैंने संस्कृत की कुछ श्रेष्ठ कृतियों का उन्हीं की उद्भावित (भाव और विचार ग्रहण करके लिखी गई) हिन्दी कृतियों से तुलनात्मक अध्ययन वाली कृति ''संस्कृत की कालजयी कृतियाँ हिन्दी वाङ्मय के दर्पण में'' प्रकाशित कराई थी और 2008 में कालिदास अकादमी, उज्जैन द्वारा आयोजित ''राज्य स्तरीय भोज पुरस्कार'' हेतु प्रेषित कर दी थी। अज्ञातनामा किन्तु प्रातः वन्दनीय नीर-क्षीर-विवेकी परम संत परीक्षकों ने संस्कृत के बह्वधीत, बहुश्रुत और बहुज्ञ विद्वलेखकों के ग्रंथों को छोड़कर मुझ अकिंचन, संस्कृत में मात्र एम.ए. उपाधिधारी की जो प्रतिस्पर्धी रचयिताओं का छात्र होने की भी योग्यता नहीं रखता था, कृति को पुरस्कृत करके धन्य कर दिया, कृतकृत्य कर दिया! उनके संतत्व को शत्-शत् वन्दन।

आदिकवि वाल्मीकि किसी राज दरबार में पुरस्कार लेने नहीं गए-राम के दरबार में भी नहीं। वे तो सीता को उनका समुचित सम्मान और अधिकार दिलाने के लिए राम से भी लड़ पड़े थे- उन्होंने अपने शिष्य सीता-पुत्र कुश और लव को शस्त्र विद्या में इतना पारंगत और निपुण कर दिया था कि उन्होंने भरत और हनुमान सहित समस्त रामवाहिनी को धूल चटा दी थी और काव्य पाठ तथा गायन में ऐसा निष्णात कर दिया था कि उसे सुनकर अयोध्या की समस्त राजकीय सभ्यता और सत्ता तथा जनता साम्राज्ञी सीता के साथ हुए अमानवीय अन्याय की अनुभूति करके करुणा विगलित होकर पश्चात्ताप की अश्रुधारा में बह गई थी! विश्वविश्रुत महाकवि कालिदास भी प्रजारंजक लोकपालक परम प्रतापी सम्राट् विक्रमादित्य के सम्मान्य राजकवि अवश्य थे किन्तु उन्होंने अपना चातकत्व कभी छोड़ा नहीं था। अतः उन्हें भी सम्राट् का कोपभाजन बनकर एक वर्ष के निर्वासन का राजदंड भुगतना पड़ा था। रामगिरि के शिखर पर कोई प्रिया वियुक्त यक्ष नहीं, स्वयं चातक महाकवि बैठा था और पर संतापहारी मेघ से अपनी वियुक्ता प्रिया को अपने कुशल-क्षेम का संदेश भेज रहा था।

अष्टछाप के एक कवि चातक कुंभनदास ने शहंशाह अकबर के दरबार का आमंत्रण ठुकराते हुए कहा था- ''संतन को कहा सीकरी सौं काम? आवत-जात पनहियाँ टूटत, विसरि जात हरिनाम!!'' तो अपने घनश्याम राम के परमाराधक एक निष्ठ याचक चातक तुलसी ने तो डंके की चोट पर पुकारकर कहा था- ''माँगना है तो केवल अपने राम से माँगो-

''जाचिअ कोउन जाचि जौ जिय जाचिअ जान की जानहि रे!

जेहि जाचत जाचकता जरि जाय जो जारत जोर जहानहि रे!!''

और वह परम संत महामानव चातक, तुलसी प्राकृत चातक की तरह उस स्वाती के जल को पीकर तृप्त और संतुष्ट होकर नहीं बैठ गया अपितु उसने घनश्याम के स्वाती के करुणा बिन्दुओं को अपने विशाल 'मानस' में भरकर उससे लोक कल्याणकारिणी, सबकी, सर्वदा, सर्वत्र प्यास बुझाने वाली और पाप-ताप-संताप से मुक्तिदायिनी ''रामचरितमानस'', 'कवितावली', 'गीतावली', 'विनय पत्रिका' जैसी मंदाकिनियों/सुर सरिताओं की अमृत-धारा प्रवाहित करके घनश्याम राम के ऋण से भी स्वयं को उऋण कर लिया। ऐसे चातक शिरोमणि परण्तापहार ही स्वार्थ होता है। वह अपने मेघ से पुकार कर कहता है-

''स्वार्थे न कामये किंचिन्नि: स्पृहोऽस्मि सर्वथा जलद!
कामयेऽहं दु:खतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।
नहीं माँगता स्वार्थ में तुमसे मैं कुछ मेघ!
सबकी दु:ख निवृत्ति का हित याचक हूँ बस एक!!''

वेद व्यास ने पुकार-पुकार कर कहा था- ''तुम मनुष्य हो, सृष्टि रचयिता की सर्वोत्तम कृति हो- 'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित'- अत: मनुष्यवत् रहो! परोपकार करो- रामत्व अपनाओ। नहीं कर सकते हो तो परोपकार से तो बच ही सकते हो और अपने मनुष्य होने का प्रमाण तो दे ही सकते हो। परपीड़न (दूसरों को सताने, पर स्वत्वापहार) के निशाचरत्व से- रावणत्व या दुर्योधनत्व से तौबा करो मेरे भाई! क्योंकि परोपकार: पुण्याय पापाय पर पीडनम्।'' परन्तु किसने महर्षि की बात सुनी? और आज भी कौन सुन रहा है?

हम राम को मात्र जपते हैं, रामत्व को अपने आचरण में-व्यवहार में कहीं नहीं उतारते-राम बनकर नहीं जीते! हमारे आचरणों और व्यवहारों में सर्वत्र और सर्वदा रावण अट्टहास कर रहा है! क्या कोई जटायु सीता को छुड़ाने के लिए उससे टकराकर मृत्यु का वरण करने को उद्यत हो पा रहा है?

सभी द्रोण-भीष्म की तरह चुपचाप चीरहरण के इस अदर्शनीय दृश्य को देख रहे हैं। कोई कृष्ण की तरह उसकी रक्षा के लिए आगे न आए, न सही। क्या कोई विकर्ण (दुर्योधन के छोटे भाई) या महात्मा विदुर की तरह रोकने में असमर्थ होने पर उसका कठोर शब्दों में प्रतिवाद करके सभा छोड़ने का साहस भी कर पा रहा है? सभी अपनी नपुंसकता को, क्लैव्य को, अहिंसा, क्षमाशीलता, सहिष्णुता के मिथ्या आवरण में ढँककर अपनी मनुष्यता की रक्षा करने का-अपने इंसान होने का थोथा दावा कर रहे हैं? क्या हमारे समाज में कभी चातकवृत्ति, गजवृत्ति या हंसवृत्ति लौटेगी? प्रियमाण मनुष्यता संजीवनी पाकर फिर उठ खड़ी होगी और आगे-आगे चलकर समाज का मार्गदर्शन कर पाएगी?

सम्पर्क : सिवनी (म. प्र.)

डॉ. आर.बी.भण्डारकर

बुन्देलखण्ड के विवाह-लोकगीतों में जीवन सौंदर्य

भारतीय संस्कृति में पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक अधिकांश क्षेत्रों में विवाह एक संस्कार है, अस्तु एक उत्सव है। मुझे यह कहने में भी कुछ अतिशयोक्ति नहीं जान पड़ती है कि एक व्यक्ति के जीवन का यह सर्वाधिक बड़ा उत्सव होता है।

आज के युवा, जो विवाहोत्सव देखते हैं तो उन्हें लगता होगा कि चूँकि पहले इतना तकनीकी विकास नहीं था, इसलिए पहले के विवाह इतने शानदार, मनोरंजक, आह्लाद प्रदायक नहीं होते होंगे। अगर वह सचमुच में ऐसा सोचते हैं तो यह उनकी खाम-ख्याली ही है।

क्षमा करें, यह सच है कि आज के विवाहों में सजावट से लेकर वैवाहिक अनुष्ठानों तक में दिखावा अधिक है, आत्मीयता कम; धन का प्रदर्शन अधिक है, भावनाओं का कम; उतावलापन अधिक है, अवसर को कैमरे में कैद कर लेने की ललक अधिक है; रुककर धैर्य पूर्वक संस्कार करने की निष्ठा कम, अपने उत्सव की चिंता अधिक है, प्रकृति की चिंता कम, स्वाद की चिंता अधिक है, भोजन को प्रसाद मानने की भावना गायब है।

वस्तुत: पहले के विवाह-उत्सव कम आकर्षक, कम मनोरंजक और कम उत्साहपूर्ण कतई नहीं होते थे, मुझे लगता है कि वह आज से अधिक स्वाभाविक और नैसर्गिक होते थे। आज सजावट में कृत्रिमता का बोलबाला अधिक होता है। जो धनीमानी लोग कहते हैं कि उन्होंने अमुक शहर से पुष्प मँगाए हैं/ थे, उनके वह पुष्प भी कृत्रिम सजावट की चकाचौंध में निरीह-से दिखते हैं।

पहले सजावट पर्यावरण-प्रिय होती थी। बुंदेलखंड की शादियों में स्वागत द्वार बनाने के लिए लोहे के नहीं लकड़ी के खम्बे गाड़े जाते थे, उन पर प्लास्टिक/धातु की चमकनी के स्थान पर आम या नीम के पत्ते बड़े ही करीने से लपेटे जाते थे। बेनर कृत्रिम नहीं, कपड़े के बने होते थे जिन पर केमिकल की प्रिंटिंग नहीं बल्कि मैदे की लेई और स्वच्छ धवल रुई से 'शुभागमन' और 'स्वागतम्' लिखा जाता था। मुहल्ले में जहाँ से बारात प्रवेश करनी होती थी वहाँ 'शुभागमन' और विवाह स्थल या कन्या के घर के पास के स्वागत द्वार में 'स्वागतम्' का बेनर लगता था। किसी भी बेनर में किसी का नाम नहीं, क्योंकि विवाह भले ही एक घर का हो पर यह उत्सव तो सबका होता था-घर का, परिवार का, मुहल्ले का, गाँव का। इसलिए तोरण और पताके पूरे मुहल्ले में लगते, इसके, उसके, तिसके सबके घरों के सामने।

विवाह में आज डीजे बजता है, तरह-तरह के साउंड सिस्टम होते हैं। उनकी कानफोड़ू आवाज से सब उकता जाते हैं, कभी-कभी गुस्सा फूट भी पड़ता है-'भई, बंद करो थोड़ी देर के लिए, मंत्रोच्चार भी नहीं सुन पा रहे हैं। 'आप कल्पना करें कि यह मशीनें पर्यावरण को नुकसान तो पहुँचाती ही हैं, हमारी श्रवण-क्षमता को भी बुरी तरह प्रभावित करती हैं।'

उस समय गीत महिलाएँ गाती थीं सामूहिक रूप से, समवेत स्वर में। लोक के आलोक में निमज्जित यह गीत अत्यंत सुमधुर होते थे। विवाह के अवसर पर इन गीतों की सुमधुर ध्वनियाँ गूँजती थीं। गायन सामूहिक अवश्य पर तालमेल ऐसा कि एक ही ध्वनि सुनाई देती, मजाल कि किसी का स्वर किंचित भी इधर-उधर हो जाये। गीत इतने मनमोहक और भाव भरे होते थे कि घराती हो या बाराती हर किसी का मन मयूर नाच उठता था। इन गीतों में रिश्ते की मनुहार है, हँसी-ठिठोली है, मजाक है, व्यंग्य है; उलाहने हैं, ताने हैं, व्यथा है तो संस्कारों की कथा भी है। यह गीत आज भी हैं पर गाने वाली गृहिणियाँ नदारद हैं।

अब आप कहेंगे कि डीजे नहीं होता होगा तो बच्चे क्या करते होंगे? वह तो एकदम बोर हो जाते होंगे। जी नहीं, बाराती बच्चे दूल्हे के संग कार्यक्रमों में भागीदारी करते, मेहमानबाजी का लुत्फ लेते थे, तो जनाती बच्चों को तो आनंद ही आनंद-माता-पिता के सान्निध्य का आनंद, 'करके सीखो का भी आनंद।' माताएँ पूड़ियाँ बेलती, बच्चे उनको दौड़-दौड़ कर भटिया तक पहुँचाते; पिता, चाचा कहते-शाबाश! और लाओ बेटा दौड़कर। जो किशोर वय होते वे स्वागत द्वार बनवाने, तोरण-पताके बनवाने में बड़ों की मदद करते। सच मानो यह सब करते हुए उन्हें ऐसा लगता कि उन्हें 'आठों सिद्धि नवों निधि' का सुख मिल रहा है।

बुंदेलखंड के उत्तर-पश्चिम क्षेत्र के विवाह की विभिन्न रस्मों पर जो गीत गाये जाते हैं, वे गीत मानव मन की आस्था, लोक विश्वास, रीति-रिवाज और परंपराओं को बखूबी प्रकट करते हैं।

वैसे तो विवाह की प्रक्रिया बड़ी लंबी होती है पर विवाह रस्मों की सही शुरुआत कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को 'पीली चिट्ठी' भेजी जाने से होती है। इस चिट्ठी को बुंदेलखंड में कहीं-कहीं 'रेवा' तो कहीं-कहीं 'सुतकरा' भी कहते हैं।

अब तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। पाँत-पंगत के लिए सामग्री जुटाना, पिसाई, पिलाई का कार्य, वस्त्राभूषण खरीदना, वर्तन-भांडे क्रय करना आदि अनेक कार्य। हर कार्य की शुरुआत पूजन व गायन से। आम तौर पर देवताओं का स्तुति गायन होता है व साथ ही वर पक्ष के यहाँ बना/बन्ना और कन्या पक्ष में बनी(बन्नी) नामक गीत गाये जाते हैं। जैसे-

बन्ना-

(1)साँची कहौ मेरे लाला लखन जू; अबकी मिलन कब होई मेरे लाल।

(2) बना की कुतलूपुर ससुरार बना मेरौ भोरई से सज गयो रे।

बना के भैया थानेदार बना को कपड़ा लियाबें रे।

बना की भौजी लम्बरदार, सबई पै हुकुम चलावें रे।

बना के फूफा हैं हुशयार, बना कों अँगन सजावे रे

बना की बुआ चतुर सुजान बना की नजर उसारें रे।

बना की कुतलूपुर ससुरार बना मेरो भोरई से सज गयो रे।

(3)जनक जू के द्वारें राम बना बन के आये।

बन्नी-

(1)मेरी बन्नी चतुर सुजान, अनौखौ वर ढूँढ़ लओ है रे।

(2)सुहाग बरसैह्य बन्नी तेरे अँगनवाँ, सुहाग बरसैह्य बन्नी तेरे अँगनवाँ।

गुलाल बरसैह्य बन्नी तेरे अँगनवाँ, सुहाग बरसैह्य बन्नी तेरे अँगनवाँ।

बेला चमेली के फूल सजे हैं, गुलाब बरसें बन्नी तेरे अँगनवाँ।

सुहाग बरसैह्य बन्नी तेरे अँगनवाँ।

गीत-संगीत का यह उत्सव महीनों चलता रहता है। महिलाएँ सुबह शाम जब भी मौका मिलता है यह गीत गाने लगती हैं। आगन्तुक या राहगीर दूर से ही जान जाता है कि इस घर में लड़की/लड़के का विवाह होना है। सच मानें, इन गीतों से पूरे मुहल्ले का वातावरण खुशियों से भर उठता है।

जब विवाह का मुख्य आयोजन आता है तो उन दिनों को तिलाई (मंगल गीत का दिन), तेल पूजन (देव पूजन का दिन) मंडप (विवाह मंडप तैयार करने का दिन) टीका (बारात आने का दिन) भाँवर (पाणिग्रहण संस्कार का दिन) और विदाई (बारात और कन्या की विदाई का दिन)नामों से पुकारा जाता है।

समय बड़ी जल्दी निकल रहा है। लो आज तो तेल पूजन है। पुरुषों की जिम्मेदारी है कि वे नाते-रिश्तेदारों, मित्र-मिडोइयों को न्योता दें; देवी-देवताओं को न्योता देने की जिम्मेदारी तो इन गृहिणियों की है। निकल पड़ती हैं एक दो बुजुर्ग महिलाएँ, कुछ युवतियाँ पूजा का थाल सजाकर। मंदिर, मंदिर, थान, थान जाती हैं गीत गाते हुए। देवता के सामने पहुँच कर गाती हैं-

माता मइया नौतौ लेउ, देई बाबा नौतौ लेउ/कालका मैया नौतौ लेउ तो तुम मेरे आइयो।

तिहाई लाड़ी-लाड़ी कौ बियाव सो काज सम्हारियो।

तुम बिन ररियाँ न होंय कमल नईं बैठियो।

यह आस्था और विश्वास ही है कि मन में विचार रहता है कि विवाह में सभी देवता आ जायें कोई चूक न जाये। इसलिए महिलाएँ कहती हैं-''भूले-बिसरे नौतौ लेउ तो तुम मेरे आइयो।.....

सब को न्योता दे दिया, उन्हें कैसे भूल सकते हैं जो कभी हमारे परिवार के अंग थे पर अनंत में विलीन हो गए हैं- घर के पुरखा नौतौ लेउ तो तुम मेरे आइयो।

तेल पूजन के ही दिन बन्नी को तेल चढ़ता है। उस समय का मनमोहक गीत देखिए-

''आज मोरी बन्नी को तेल चढ़त है,

तेल चढ़त है, फुलेल चढ़त है। आज मोरी बन्नी....

सोने के बेलन में तेल भरौ है,

हल्दी मिलाय कें बन्नी कों चढ़ाओ,

देखो बन्नी मेरी कैसी दमकत है। आज मोरी बन्नी....

मंडप के दिन सुंदर मड़वा छा लिया गया है। अब आज तो टीका है।...बच्चों का शोर सुनाई देता है, 'बारात आ गयी, बहुत सारी गाड़ियाँ हैं, बरतयउ कुल्ल हैं।' पुरुष निकल पड़ते हैं बारात की अगवानी करने। बारात जैसे-जैसे जनवासे की ओर आती है, महिलाएँ व्यंग्य भरे गीत गाकर हँसी-ठिठौली के साथ बारात का स्वागत करती हैं-

'मेहमान गाड़ी तीन लियाये, मन की एकऊ नइयां। टूटी खटली, फ़टो सलीता, बैलन झूलें नइयां। मेहमान....

मेहमान मेरे तीनइं आये मन के एकऊ नइयां।

ठाड़ी चुटिया, फटो अँगोछा, पाँय पन्हइयाँ नइयां। मेहमान....

और फिर-

मेहमान मेरे आये हो, मोरा रेरा हो।

मेरो पातुरिया सौ दूल्हा रे, मोरा रेरा हो।

मेहमान मेरे आये हो, मोरा रेरा हो।

वे तो कनवइं कनवा आये हो, मोरा रेरा हो। मेहमान..

वे नकटई नकटा आये हो, मोरा रेरा हो।

मेहमान...

वे तो बूँचई बूँचा आये हो, मोरा रेरा हो।

मेहमान...

भावनाएँ देखिए; दूल्हा में कोई कोर-कसर नहीं है जबकि बाराती काने, नक कटे, कन कटे दिख रहे हैं, इन्हें। दूल्हे में खोट दिखेगी कैसे? उसे तो हमने ही चुना है न।

बारात जनवासे में ठहर गयी। जलपान कराया गया, अब द्वारचार की बारी है।...लो दूल्हे को लेकर बारात दरवाजे पर आ गयी है। हर कोई दूल्हा देख लेना चाहता है। घर की, गली-मुहल्ले की बालाएँ, महिलाएँ उचक-उचक के देख रही हैं; कुछ अपनी-अपनी अटारियों से देख रही हैं। दरवाजे पर 'स्वागत का सम्मुख मोर्चा सँभाले महिलाएँ' गाने लगती हैं-

राम आय गए जनक जी के द्वार, औसर नीकौ बनौ।

लला आइ गए जनक जी के दुआर, औसर नोनौ बनौ।

दूल्हा के मामा ढोलक बजावैं, फूफा बजायँ करताल; औसर नोनौ बनौ।

दूल्हा के कक्का झींका बजावें, भैया मंजीरा में निढाल। औसर नोनौ बनौ।

बाजे वालों को नजदीकी सम्बन्धी कहकर हँसी-मजाक किया जा रहा है। कोई बुरा नहीं मान रहा है। फूफा, मामा, काका हँस रहे हैं। सम्बन्धों का सौंदर्य जीवंत हो रहा है।

एक और हँसी-ठिठोली देखिए-

साजन आये, हितुआ आये,

ऐसी गरज कहा (क्या)साजन आये।

बाँधत कौ अंगौछा साजन घर धर आये
जुइया कौ लुगरा लपेटें आये, हो चले आये
ऐसी गरज कहा साजन आये।
पहनत कौ कुर्ता सजना घर धर आए
सो बहना कौ ब्लॉउज पहरे आये। हो.....
पहनत की धोती सजना घर धर आये
सो भौजी को लहँगा पहन आये। हो चले.....

यहाँ प्यार है, मनुहार है, स्वागत है, वन्दन है, अभिनन्दन है पर मजाक का हक भी झलक रहा है।

इधर अब लड़की के बाबा टीका का थाल लेकर आ गए हैं। पंडित जी जोर-जोर से मंत्रोच्चार कर रहे हैं। मंत्रोच्चार थमा, पंडित जी बाबा से दूल्हे का तिलक करवा रहे हैं, महिलायें गा रही हैं-

कोट नवै, पर्वत नवै, सिर नवै न नवाये।
माथो अजुल राजा तब नवै,
जब साजन आये।
कोट नवै पर्वत नवै, सिर नवै न नवाये।
माथो बबुल राजा तब नवै,
जब साजन आये।

परम्परा है, हृदय के भाव हैं कि किसी के लिए विनम्र हुआ जाये या नहीं पर जिसे बेटी दे रहे हैं वह तो साजन हो गया, उसके प्रति विनम्र भाव तो अंदर से उपज जाता है, उसके सम्मान में सिर स्वयमेव झुक जाता है।

विवाह है, बारात आई है, घराती भी हैं, उत्सव है, बड़े पैमाने पर खाना बन रहा है। महिलाएँ मंगल-गीत गा रही हैं। इल्ले! यह तो आँधी-पानी आने लगा, अब खाना कैसे बने? चिंता की कोई बात नहीं, महिलाएँ गा उठती हैं-

आँधी औ पानी कों बंद करत हैं,
सो हनुमत हैं रखवारे पवन के
हनुमत हैं रखवारे।

और सचमुच आँधी-पानी रुक गया। हनुमान जी पहले से ही निमंत्रित थे, उन्होंने पुकार सुनी, तुरंत अपनी शक्ति से विघ्न दूर कर दिया। धन्य भाग्य मेरा कि आस्था....और..विश्वास दोनों के दर्शन हुए।

अब भोजन की बारी है। आज भोजन केवल भोजन नहीं एक प्रसाद है। कितनी ही भीड़ हो, यहाँ बुफे की गुंजाइश नहीं। भोजन के लिए पंगत (पाँत) बैठती है तसल्ली से। भोजन प्रेम से, मनुहार से थर्मोकॉल /प्लास्टिक के पत्तलों में नहीं, हमारे पूज्य वृक्ष बरगद के पत्तों से बने पत्तलों में परोसा जाता है, पानी के लिए थर्मोकॉल या प्लास्टिक के गिलास नहीं, मिट्टी के कुल्हड़ होते हैं, जिनके पानी में मिट्टी की सोंधी खुशबू आती है। इस प्रकार बड़े सत्कार भाव से भोजन खिलाया जाता है-'पूड़ी गरम है, बहुत मुलायम है, एक परोस दूँ साब?'

टीका का दिन बीता। पंडित जी ने बताया था कि विवाह का शुभ-मुहूर्त अगले दिन प्रातः 9 बजे तक ही है। सो सारी तैयारियाँ जल्दी-जल्दी हुईं। मंडप के नीचे वर-कन्या उपस्थित हैं। हवन हो रहा है, पंडित जी बड़ी ही मधुर ध्वनि में मंत्र पढ़ रहे हैं। कन्यादान की रस्म के लिए लड़की के माता-पिता गाँठ जोड़कर बैठे हैं। महिलाएँ गा रही हैं-

दिइयो गैयाँ, बछियाँ सोने सींग मढ़ाय।

दिइयो भैंस जनेई छिड़रिया को छोभौ खाय।

बिटिया दे रहे हो तो हे पिता! वह सब कुछ दे देना जो बिटिया की गृहस्थी बसने के लिए आवश्यक हो। लोगों की ऐसी धारणा बन गयी है कि दूल्हे की माँ को सर्वाधिक अपेक्षा होती है कि विवाह में खूब उपहार मिलें ताकि वह औरों के सामने अपनी और अपने परिवार की महत्ता दिखा सके। इसीलिए यहाँ दूसरी पंक्ति में कहा जा रहा कि 'दुधारू भैंस अवश्य देना ताकि दूल्हे की माँ को सन्तोष मिल सके।'

अब पैर पुजाई की बारी है। घर परिवार, नाते-रिश्तेदार सब पैर पूजते हैं बारी-बारी से, उपहार में पैसे, बर्तन, घरेलू सामान देते हैं। पुण्य का कार्य है यह। कौन यह पुण्य नहीं कमाना चाहेगा?

लोग पैर पूज रहे हैं। यजमान को उत्साहित करते हुए तथा दूल्हे को रिश्ते की जानकारी कराने के उद्देश्य से महिलाएँ गाती हैं-

घरईं बहिनियाँ/भतीजिया/भनिजिया के पाँय पूजौ, घरही गंगा नहाव।

पैर पूजने का परिणाम क्या हुआ? इन महिलाओं के शब्दों में ही सुनिए-

पापऊ पनारिन बह गए, धरम रहे उतराय।

पैर पुजाई हो गयी अब भाँवर(अग्नि-परिक्रमा=सात फेरे) होनी है, विवाह तो तभी सम्पन्न होगा। सुनिए-

जा पहली भाँवर हो, अभै तौ बिटिया बापई की।

जा दूजी भाँवर हो, अभै तौ बिटिया बापई की।...

जा सातैं भाँवर हो अब बिटिया भईं हैं पराईं।

लो विवाह हो गया, अब बिटिया ससुराल की हो गयी।

अरे कुछ रस्में और होनी हैं। इनमें एक है, कंकन छोरना। दूल्हे राजा दुलहिन का कंकन छोर रहे हैं। बड़ी कठिनाई हो रही है, सखियों ने पहले से ही कंकन की गाँठों को कस दिया है। बड़ी-बूढ़ी महिलाएँ गा रही हैं-

छोरौ-छोरौ सिया जू के कंकन महाराज अब छोरौ।

तो सखी-सहेलियाँ, भावजें हँसती-ठिलठिलाती हुई गाती हैं-

लला हँसी खेल नइयाँ कंकन को छोरबौ,

जाय समझो न तुम तौ धनुष टोरबौ।

लला कंकन की गाँठें लगी हैं मजबूत,

देखें हम कैसे हौ तुम लला या सपूत।

यहाँ 'लला' एक करारा व्यंग्य है। जो लड़के बचपन में लाड़-प्यार में केवल 'लला' बने रहते हैं, जीवन-संग्राम के लिए आवश्यक शिक्षा ग्रहण नहीं करते हैं, वे जीवन में कभी सफलता प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

विवाह में जो भी दूल्हा होता वह राम का प्रतीक बन जाता है; वह इस समय राम ही बन जाता है और दुलहिन सीता बन जाती है; क्योंकि जन मानस के आदर्श यही हैं।

विवाह की सभी रस्में सम्पन्न हो गयी हैं; अब बारात की विदाई की बेला है। देर हो रही है, धूप चढ़ आई है। महिलाएँ व्यंग्य-वाण छोड़ती हैं-

गहाय दे इनकी लठिया कौने बिलमाये।
आँस की नइयां बाँस की नइयां,
अंडउआ की लठिया, कौने बिलमाये। गहाय दे.....

बाराती जाने लगे हैं। दो दिन की चहल-पहल सुनसान में बदल रही है। भाव उमड़ने लगते हैं-

काहे भगे जात पानी पियें जउ।
हो मेरे नए साजन पानी पियें जउ।

ऐसे गीत हजारों हैं। विवाह की हर छोटी-छोटी रस्म के सैकड़ों गीत, तरह-तरह के गीत हैं। इतने समसामयिक, भाव भरे गीत किसने लिखे, इनका रचनाकार कौन है, कोई नहीं जानता। कुछ गीतों को तो आज के स्थानीय लोकगीतकारों ने सृजा; भले ही उनके नाम हम भूल गए हों पर अधिकांश गीत परंपरा से चले आ रहे हैं और श्रुति-स्मृति के आधार पर अपना अस्तित्व आज भी बनाये हुए हैं। हाँ हमारी गृहिणियाँ अवश्य ही इनमें अवसर, स्थिति, स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार कुछ न कुछ जोड़ती, घटाती रहती हैं और इन्हें स्थानानुकूल बना लेती हैं। इसीलिए इन गीतों के बोलों में भी अंतर आ जाता है। एक बात यह भी कि महिलाएँ इन गीतों में अपने घर-परिवार और वरपक्ष के लोगों के नाम जिस सफाई से जोड़ लेती हैं उससे इन के मस्तिष्क की स्तुत्य उर्वरता, प्रत्युत्पन्न मति प्रकट होती है।

विवाह के यह गीत लोकगीत हैं; इनमें सहज रस-निष्पत्ति होती है। भाव ऐसे अप्रतिम कि ध्वनि काव्य, गुणीभूत व्यंग्य और चित्र सब दण्डवत करते से दिखाई देते हैं। इनमें ऐसी रसधार बहती है कि वात्सल्य, श्रृंगार, हास्य, शांत रस देह धरे उपस्थित हो जाते हैं। बेटी की विदाई के समय सब जानते हैं कि विवाह के बाद भी बेटी का आना-जाना होता रहेगा लेकिन फिर भी पहली बार बेटी को विदा करते समय करुणा का जो दृश्य उपस्थित होता है वह 'करुण रस' की सी ही मन:स्थिति ला देता है। धन्य है बुंदेलखंड, धन्य हैं वहाँ की परंपराएँ, स्तुत्य हैं वहाँ के लोकगीत।

संपर्क : भोपाल (म.प्र.)

प्रो. राजेश लाल मेहरा

निज भाषा उन्नति अहे...

शब्द की अपनी शक्ति और संस्कृति होती है। शब्द अपनी आभा से दैदीप्यमान होते हैं। शब्दों के प्रयोग में हम सावधान रहें, भाषा की शुचिता बनी रहे इसलिए गुरुकुलों और पाठशालाओं में श्लोक, सुभाषित, मंत्र, प्रेरक गीत आदि का अभ्यास कराया जाता था। यह प्रायः संस्कृत या अपनी मातृभाषा में होते थे। इस अभ्यास के कारण उसके भावी जीवन में अच्छे शब्द स्वाभाविक संचरित होते रहते थे। पारिवारिक संस्कार भी इसे पोषित करते थे।

संस्कृत में विद्यार्थी शब्द की व्युत्पत्ति, उसके धातु रूप आदि का अभ्यास करते हैं। इस कारण उसे शब्द प्रयोग का उचित ज्ञान होता है। अभ्यास की यह परंपरा कायम तो है मगर कम हो गई है। भाषा तो निरंतर अभ्यास की वस्तु है। उस अभ्यास से जो गुजरेगा उसकी भाषा में उतना निखार आता जाएगा। भाषा अपनी जड़ों और संस्कृति से जोड़ती है, शब्द उसका सिंचन करते हैं और आनंद रूपी सुमधुर पुष्प उसमें से विकसित होते हैं। भाषा सब कुछ देने का सामर्थ्य रखती है। गिरे हुए को ऊँचा उठा सकती है, भटके को मार्ग दिखा सकती है, चिंता का हरण और जिज्ञासाओं का समाधान कर सकती है। मनुष्य के कल्याण के लिए सत्संग को सर्वोपरि बताया गया है। सत्संग का माध्यम भी तो भाषा ही है। सर्वांगीण उन्नयन का प्रथम चरण भाषा का अभ्यास है। इसलिए गुरुजनों ने उच्चरित करवाया-सत्यं वद धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

हमारे शिक्षा तंत्र में ऐसा कुचक्र चला कि प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा की जगह विदेशी भाषा अंग्रेजी में दी जाने लगी। छोटे बच्चों को पोयम रटाने लगे। जिस समाज में उसे रहना था, उठना-बैठना था, बोलना-चालना, व्यवहार करना था उसी की भाषा से उसे दूर कर दिया गया। न उसे लोकोक्ति का पर्याप्त ज्ञान रहा न मुहावरों का। परिणाम यह हुआ कि वह न अपनी भाषा में पारंगत हो सका न विदेशी भाषा में। इस खिचड़ी भाषा या भाषा के घालमेल ने कई बार अर्थ का अनर्थ किया। इस विषय में हम निरंतर समझौते करते चले गए। न माया मिली न राम। क्या हमें पीड़ा नहीं होती जब बच्चा हमसे पूछता है सड़सठ मतलब क्या होता है और हम अपनी कालर ऊँची कर उसे कहते हैं बेटा सड़सठ मतलब सिक्सटी एइट। पाव भर सब्जी या दूध का मतलब वे जानते नहीं। पढ़ाई क्या सिर्फ अच्छे जॉब और पैकेज के लिए ही बची है? हमारा तो एक सीधा सा सूत्र है जो जड़ से कटा वो मन से हटा। हमारे पढ़े-लिखे बच्चे अपनी

परंपरागत बोलियों से भी कटने लगे। बोलियों को पिछड़ा और गँवार समझा जाने लगा। न जाने कितनी बोलियाँ लुप्त हो गईं और कितनी लुप्त होने की कगार पर हैं। इन बोलियों में निहित पूर्वजों की अकूत ज्ञान संपदा से भी हम हाथ धो बैठे। हर चीज की तलाश गूगल में करने की प्रवृत्ति ने हमारा कितना नुकसान किया है? फिर गूगल का अनुवाद! भगवान बचाए।

भाषा को छीछा-लेदर करने में कुछ मीडिया समूहों ने कोई कमी नहीं छोड़ी। अंग्रेजी समाचार पत्र शायद ही किसी हिंदी शब्द का प्रयोग करते हों परंतु हिंदी के अनेक समाचार पत्र धड़ल्ले से अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग में लगे हैं। एक बहुत बड़े पाठक समूह के कारण दंभी हो चुका समाचार पत्र तो विरोध और आलोचनाओं के उपरांत भी अपनी इस मक्कारी पर कायम है। कुछ लोग हिंदी लचीली है ऐसा मानकर अंग्रेजी शब्दों के घालमेल को जायज़ ठहराने का बेशर्म प्रयास करते हैं। कुछ हमारे ही पढ़े-लिखे लोग साइकल, पंचर जैसे अनेक शब्दों का ऊटपटाँग अनुवाद कर हमारी भाषा रूपी माँ की खिल्ली उड़ाते हैं। एक बात याद रखना चाहिए कि अतिथियों का आदर-सत्कार किया जाता है, उसे सिर पर नहीं बैठाया जाता। अपना-अपना ही होता है, चाहे घर हो या भाषा। होटल चाहे पंच सितारा हो, कितने दिन मन लगेगा, उसे घर थोड़े ही बना लिया जाएगा। घी का लड्डू टेढ़ा-मेढ़ा भी पोषक और स्वादिष्ट होता है।

टी आर पी के भूखे समाचार चैनलों की भाषा पर तो क्या कहें। मुझे आज तक किसी चैनल का वह वाक्य चुभता है जब पूज्य शंकराचार्य जयेंद्र सरस्वती जी की गिरफ्तारी पर (बाद में वे निर्दोष बरी हुए)कहा गया।

एक महिला पत्रकार उनके सम्मुख माइक ठूँसते हुए व्यंग्यात्मक हँसी के साथ टेढ़ा मुँह बनाते हुए बोली- हाँ तो मिस्टर शंकराचार्य इस बारे में आपका क्या कहना है? ऐसे ही वाक्य प्रयोग साईं बाबा के प्रसंग पर पूज्य शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानंद जी के सम्मुख किए गए थे। किसी के साथ गाली-गलौच ही हाथापाई है, उद्दंडता नहीं है, भाषा की मर्यादा के प्रतिकूल आचरण भी उद्दंडता ही है। उद्दंडता पर दंड का विधान है परंतु अपना आचरण नैतिकता से परे है तो दंड का विधान चाहे उसके लिए हो न हो अपनी आत्मा ही अपने को दुत्कारती है।

भाषा व्यक्ति का भी भूषण है और समाज का भी। लोकतंत्र के चारों स्तंभ उसी समाज के लिए बने हैं। सब इस बात के लिए प्रयत्नशील रहें कि भाषा की शुचिता और आचरण की मर्यादा बनी रहे। भारतीय समाज इस बात के लिए भी आशान्वित है कि भारतीय न्यायालयों में निर्णय उस भाषा में लिखे जाएँगे जो समाज व राष्ट्र की अपनी भाषा है। जिसमें अपनी माटी और सांस्कृतिक परंपराओं की सुगंध व्याप्त हो।

संपर्क: इंदौर (म.प्र.)

शंकर लाल माहेश्वरी

सामाजिक समरसता के संवर्धन में हिन्दी भाषा की भूमिका

''भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से प्रत्येक प्राणी अपने विचारों व भावों को दूसरों पर अभिव्यक्त करता है।'' यह ऐसी दैवीय शक्ति है जो मनुष्य को मानवता प्रदान करती है। उसका सम्मान तथा यश बढ़ाती है। जिसे वाणी का वरदान प्राप्त है वह अक्षय कीर्ति का अधिकारी बन जाता है।

वस्तुत: एकता का आशय उस मूल भावना से है जो विभिन्न जातियों, वर्गों, धर्मों के अनुयायी भारतीयों को अपनी विभिन्न साम्प्रदायिक मान्यताओं के होते हुए भी अनुभूति कराती है कि हम सब भारतीय हैं। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है। हिन्दी भाषा भारतीय अस्मिता की पहचान है। यह हमारे देश के जन-जन की भाषा है। बद्रीनाथ से रामेश्वरम तक और द्वारिका से पुरी तक समस्त भूभाग में हिन्दी राष्ट्रीय अस्मिता के रूप में हमारी पहचान है। यह राष्ट्रीय एकता की कुंजी बनकर भारतवंशियों के हृदयपटल को खोलकर उसमें एकता, अखण्डता, सहयोग, सहिष्णुता, उदारता, न्याय, सांस्कृतिक विरासत तथा हमारी श्रेष्ठतम मान्यताओं को आत्मसात करने वाली हमारी राष्ट्र भाषा है। हमारे देश के जनजीवन में रची-बसी यह भाषा हमारे गौरवमयी इतिहास की साक्षी है।

गरीब, अमीर, साधु-सन्त, कृषक, व्यापारी, शिक्षित, अशिक्षित, हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई समस्त समुदायों को जोड़ने वाली भाषा हमारे गरिमामय अतीत के दर्शन कराने में सक्षम है। भारत की सभी अन्य भाषायें भी हिन्दी की बहन बेटियों के रूप में हिन्दी को सम्मान देती है। हमारी सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण बनाते हुये एकता का सन्देश देने वाली हिन्दी भाषा उस गंगा के समान अथाह है जो समस्त भारतीयों को एकता के सूत्र में आबद्ध कर समूचे देश की भागीरथी बन गई है।

समूचे राष्ट्र के विविध धर्मावलम्बियों की पूजा-अर्चना, देवी-देवताओं की वन्दना तथा धार्मिक विधि-विधान की सीढ़ियाँ बनकर उस मंजिल तक पहुँचाती है, जहाँ हम सब एक हैं।

जन जन की वाणी है हिन्दी, हिन्दी देश की मान है।
राष्ट्र एकता की कुंजी है, जन गण मन की शान है।
हिन्दी ही अस्मिता हमारी, हिन्दी ही पहचान है।

भाषा मात्र अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं है, वह अपने देश काल की संस्कृति की आत्मा

होती है। भारत भूमि को विश्व पटल पर आलोकित करने में हमारे साधु-सन्तों तथा ऋषि-मुनियों ने अपनी वाणी के माध्यम से जो अमरता प्रदान की है, वह स्तुत्य है। हमारी सांस्कृतिक व पारम्परिक रीति-नीतियों को अक्षुण्ण बनाये रखने में तथा भावात्मक एकता को पोषण प्रदान करने में भाषा का विशेष योगदान रहता है। भाषा एकमात्र साधन है जो हमारे धर्म, संस्कृति, सभ्यता और विचार तरंगों का परस्पर सम्प्रेषण करते हुये जन-जन को एक सूत्र में पिरोकर एकता की मणिमाला के रूप में प्रस्तुत करती है।

भाषा ही आम आदमी की पहचान है जो उसके भावों का बोध कराती है। अपने स्वत्व को निर्धारित करती है। हिन्दी खड़ी बोली के उन्नायक श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द ने हिन्दी भाषा के महत्व को प्रतिपादित करते हुये कहा है-

''निज भाषा उन्नित अहे, सब उन्नित को मूल।''

वर्तमान समय की अनिवार्यता अब हिन्दी भाषा है। इसके माध्यम से ही देश-विदेश का प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। भाषा पर ही जाग्रत भारत की नवीन सांस्कृतिक चेतना और पुनरुत्थान अवलम्बित है।

आज के युग में आतंकवाद, नक्सलवाद और उग्रवाद का जहर जनमानस में घुलता जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में एकता का मूल मन्त्र ही राष्ट्र की अस्मिता को सुरक्षित रख सकता है और यह कार्य संचार माध्यम के द्वारा ही सम्भव है तथा भाषा ही एकमात्र रामबाण औषधि के रूप में दृष्टिगत होती है।

''हिन्दी भाषा जिसकी लोक मान्यता विश्व स्तर पर है, भारत में भावात्मक एकता का स्रोत है। नाना विषमताओं के होते हुए भी हमारे देश में विलक्षण भावात्मक एकता दर्शनीय है। जो विभिन्न जातियों, धर्मों, समुदायों और वर्गों के भिन्न-भिन्न मान्यताओं के होते हुए भी अनुभूति कराती है कि हम सब भारतीय हैं। यही हमारी एकता का सूचक है।''-डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी।

भाषा हमारी निजता को सुरक्षित रखते हुए एक-दूसरे से नजदीकियाँ बढ़ाती है और औद्योगिक क्षेत्र के विस्तारीकरण में भी भाषा ही का योगदान है जो एकता से सम्बद्ध प्रयासों का प्रतिफल है। आज के वैश्विक युग में जन-जन को जोड़ते हुए विकास की दिशा में अग्रसर होने के लिये भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जो भाईचारे की भावना को विकसित करते हुए विकास यात्रा को सुगम व सहज बनाने में विशेष भूमिका का निर्वहन करती है। भाषा से ही व्यक्ति अपने सूक्ष्म से सूक्ष्म विचारों को अभिव्यक्त कर परस्पर स्नेह सम्बन्धों को प्रगाढ़ता दिलाता है।

भाषा हमारे माथे का टीका है जो जन-जन में समरसता और संवाद से सहजता का आविर्भाव कराती है तथा सभी को एक सूत्र में बाँधती है। भाषा उस नदी के समान है जो शीतल, मधुर और सरस वाणी रूपी जल से मानव मात्र को आप्लावित करती है। सुख-दुखों में साथ निभाने का हौसला बढ़ाती है।

''राष्ट्र एकीकरण तथा एक सूत्र में आबद्ध करने में भाषा से अधिक कोई भी बलवान नहीं हो सकता।''-लोकमान्य तिलक

हिन्दी सामान्यत: एकता, अखण्डता, समन्वय तथा राष्ट्रीय गौरव की भाषा है। यह उदार और समृद्ध भाषा है इसीलिये यह राष्ट्रीय एकता की परिचायक है। इसी से राष्ट्रीय एकता, सामाजिक न्याय,

बन्धुत्व की भावना का विस्तार हुआ है। सभी में परस्पर मैत्री भाव पैदा करने वाली भाषा ही है। भाषा द्वारा ही राष्ट्रीय प्रेम, देशभक्ति, एकता, अखण्डता, सद्व्यवहार, सहिष्णुता तथा सदाशयता का प्रसार हुआ है। यह अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर तथा घृणा से प्रेम की ओर ले जाने वाली वैतरणी है। भाषा हमारी राष्ट्रीय एकता का पर्याय है। राष्ट्र की प्राण वायु है तथा हमारी राष्ट्रीय अस्मिता है।

अन्तरराष्ट्रीय जगत में भाषा ही से परस्पर जुड़ाव सम्भव है। समूचे विश्व समुदाय को जोड़ने वाली तथा सामाजिक विकास एवं राष्ट्रीय समृद्धि में भाषा द्वारा ही सम्पन्नता सम्भव है-

भारत के सर्वाधिक भाग में हिन्दी बनी हुई प्यार की भाषा,
भावों की सम्प्रेषणीयता में अति सक्षम हिन्दी दुलार की भाषा,
है सद्भाव का सागर यह, नहीं रंच मात्र तकरार की भाषा,
चाह रहा यह हिन्दी का विश्व हिन्दी हो सारे संसार की भाषा।
-अखिलेश द्विवेदी, शाश्वत

आचार्य विनोबा भावे ने कहा था ''मैं दुनिया की सब भाषाओं की इज्जत करता हूँ किन्तु मेरे देश में हिन्दी की इज्जत नहीं हो यह मैं कभी नहीं मान सकता।'' इसी प्रकार हिन्दी भाषा की महिमा को व्यक्त करते हुये योगीराज अरविन्द का कथन है कि ''भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच हिन्दी प्रचार के द्वारा एकता स्थापित करने वाले सच्चे भारत बन्धु हैं।''

''हिन्दी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्रोत है।'' - सुमित्रानन्दन पन्त

हिन्दी भाषा समूचे राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रभाषा पद का प्रतिनिधित्व करते हुए भारत के हृदय प्रदेश की भाषा बन गई है। महर्षि दयानन्द ने कहा है कि-''हिन्दी के द्वारा हमारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।''

इस समय हिन्दी का शिक्षण लगभग 1000 विश्वविद्यालयों में हो रहा है। प्रवासी भारतीय विदेशों के मन्दिरों में हिन्दी शिक्षण के रूप में हजारों बच्चों के लिये स्वयं सक्रिय हैं। हिन्दी सिखाकर आत्मीय तथा एकता के भावों का प्रचार-प्रसार करने में संलग्न हैं। हिन्दी रूपी गंगा ने समस्त भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, अरबी, पुर्तगाली आदि भाषाओं की जल धाराओं को समाहित कर विशाल सागर के रूप में प्रतिष्ठापित होने का गौरव प्राप्त किया है। अन्य भाषायें बहिनों के रूप में सहयोग कर जनजीवन में समरसता और संवाद से भारतवासियों को एकता के सूत्र में बाँधने में सहयोगी हैं।

आज यदि हिन्दी भाषा के प्रसार में आने वाले बाधक तत्वों का उन्मूलन हो सके तो राष्ट्र की एकता और विश्व बन्धुत्व की भावना द्रुत गति से गतिमान हो सकेगी।

राष्ट्र भाषा के प्रसार में निम्नांकित तथ्य बाधक हैं -

1. नौकरशाहों द्वारा अपने कामकाज में अंग्रेजी का उपयोग बाधक है।
2. राजनेताओं द्वारा वोटों की राजनीति का होना।
3. कम्प्यूटर कम्पनियों द्वारा अंग्रेजी भाषा को महत्व देना।
4. अंग्रेजी माध्यम की शिक्षण संस्थाओं का बाहुल्य।
5. क्षेत्रीय भाषावाद को बढ़ावा।

6. विज्ञापनों में अंग्रेजी भाषा का उपयोग।
7. कार्यालयों व मन्त्रालयों में अंग्रेजी भाषा का व्यवहार।
8. वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली का अंग्रेजी में होना।
9. पाठ्यक्रमों में अंग्रेजी भाषा की अनिवार्यता।
10. नये लेखकों द्वारा क्लिष्ट हिन्दी का प्रयोग।
11. दूरदर्शन पर अंग्रेजी भाषा का विशेष प्रसारण।
12. दूरसंचार व्यवस्थाओं में अंग्रेजी की महत्ता।
13. बाजारीकरण में अंग्रेजी का वर्चस्व।
14. हिन्दी लेखन में कई लोग हीनता और संकोच का अनुभव करते हैं।
15. साधन सुविधाओं की दृष्टि से अपेक्षाकृत हिन्दी के लिये साधनों का अभाव है।
16. हिन्दी के लिये उपयुक्त वातावरण नहीं बनाया गया।
17. हिन्दी भाषा व लिपि की वैज्ञानिकता का प्रचार-प्रसार नहीं है।

''हिन्दी जिन्दगी का हिस्सा है। हिन्दी किसी एक वर्ग या वर्ण या जाति या धर्म या मजहब या मार्ग या देश या संस्कृति की नहीं है। हिन्दी भारत की है। हम हिन्दी हैं, वतन है हिन्दुस्तान हमारा। हिन्दी हमारी वाणी मन्दिर की अधिष्ठात्री है। राष्ट्र की आत्मा है हिन्दी। भारत की भारती है हिन्दी। हिन्दी हिन्द की बिन्दी है। देश का दिल है। देश की दवा है। देश की दुआ है और देश की दौलत है हिन्दी। इतिहास, साहित्य, शिक्षा और संस्कृति के संस्कार की संजीवनी है हिन्दी। हिन्दी साहित्य का चन्दन है। विज्ञान का वन्दन है। राजनीति का अर्चन है। धर्म, अध्यात्म और दर्शन का अभिनन्दन है। कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कलकत्ता तक के लोगों के हृदयों का स्पन्दन है।'' - विद्या वाचस्पति डॉ. विद्या विनोद गुप्त।

संपर्क : भीलवाड़ा (राजस्थान)

विपिन बिहारी पाठक/डॉ. पूजा धामिजा

संघ-गीत एवं सांस्कृतिक भावबोध

'संस्कृति' शब्द संस्कृत भाषा के 'सम्' उपसर्ग और 'कृ' धातु से बना है। 'कृ' का अर्थ है- करना, कृत का अर्थ हुआ- किया हुआ तथा 'कृति' उसकी भाववाचक संज्ञा है। अत: सम्कृति में सम्यक् रूप से या भली-भाँति समझा जाकर 'संस्कृति' शब्द का आशय है- सम्यक् रूप से किए गए कतिपय कार्यों का भाव रूप। वस्तुत: 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग अत्यधिक व्यापक अर्थ में किया जाता है। संस्कृति अपने वृहद रूप में मानवता का मेरुदण्ड है। वह शिष्टता, सौजन्य तथा शील की आधारशिला है। किसी जाति की ज्ञानधारा किस दिशा में प्रवाहित हुई है, उसकी गुण-गरिमा में कौन से स्थायी मूल्यवान तत्त्व हैं, उसकी भावना कितनी निर्मल और जनहित साधिका है, उसकी जीवनचर्या कितनी अहिंसामय है, वह सत्य के लिए कितनी लालायित है, एक शब्द में वह कितनी उन्नयनशील है अथवा अधोगामी, इससे उसके संस्कृत या असंस्कृत होने का परिज्ञान हो जायेगा। बाबू गुलाबराय के अनुसार, 'भारतीय संस्कृति के मूलाधारों में आध्यात्मिक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक चेतना, धार्मिकता, सजीव सत्यों का संकलन, सहनशक्ति, सामाजिक चेतना आदि है।' (बाबू गुलाबराय, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ.26)

भारतीय संस्कृति अखिल विश्व के समस्त संस्कारों, परम्पराओं, सभ्यता के विभिन्न तत्त्वों, लौकिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक मान्यताओं को समाविष्ट किए हुए है। इसलिए मनीषियों ने इसे 'सा प्रथमा संस्कृति विश्वधारा' के रूप में बोधित किया है। (दिवाकर वर्मा, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद : एक तात्त्विक अवधारणा, साहित्य परिक्रमा, अप्रैल-जून, 2005, पृ.55) इसी सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय मनीषा ने राष्ट्र को भी परिभाषित किया है। उनके अनुसार राष्ट्र एक जीवन्त, जाग्रत इकाई है। राष्ट्र स्वयंभू है, सृष्टि की रचना ही इस बात का निर्धारण करती है कि किस राष्ट्र का सृजन, अभ्युदय, पतन अथवा पुनरुत्थान हो, क्योंकि राष्ट्र का भी जीवनोद्देश्य होता है। (दिवाकर वर्मा, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद : एक तात्त्विक अवधारणा, साहित्य परिक्रमा, अप्रैल-जून, 2005, पृ.55) अत: प्रत्येक राष्ट्र में अस्तित्व बोध होना सहज स्वाभाविक है।

भारतीय संस्कृति के शाश्वत तत्त्व वस्तुत: मानवता के पोषक तत्त्व हैं। अद्वेषभाव, आत्मोपम्य दृष्टि, करुणा, मुदिता, मैत्री तत्त्व हमें भारतीय संस्कृति की ओर ले जाते हैं, दूसरों के साथ उदारता से हम अपनी ही संस्कृति का पोषण करते हैं। भारतीय संस्कृति सनातन, समृद्ध और जीवन्त है। इसकी परम विशेषता रही है कि उसने पदार्थ को आवश्यक माना पर उसे आस्था का केन्द्र नहीं, शस्त्र-शक्ति का सहारा लिया, लेकिन उसमें त्राण नहीं देखा, अपने लिए दूसरों का अनिष्ट हो गया, पर उसे क्षम्य नहीं माना। यहाँ जीवन का लक्ष्य विलासिता नहीं, आत्म-साधना रहा, लोभ-लालसा नहीं, त्याग-तितिक्षा रहा। (डॉ.राजेन्द्र कुमार

सिंघवी, साहित्य का सांस्कृतिक पक्ष, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, 2018, भूमिका-पृ.1)

यजुर्वेद में कहा गया कि हम राष्ट्र के पुरोहित हैं। हम भोग में भी त्याग के समान आचरण करते हैं। विश्व के सभी प्राणी सुखी हों, ऐसी उदात्त भावना है। हम प्रकृति के सहचर हैं, जिससे हम रस ग्रहण कर जीवन को गति प्रदान करते हैं, दूसरी ओर पश्चिमी दृष्टि की धारणा है कि मनुष्य का प्रकृति पर आधिपत्य है और वह भोग के लिए है। भारतीय परम्परा का ज्ञान हमारे साहित्य ने करवाया। राम, कृष्ण, वाल्मीकि, वेदव्यास का व्यक्तित्व हमारी विरासत में साहित्य की देन है। शरीर नश्वर है, कर्म ही जीवन है, ज्ञान, इच्छा और क्रिया का समन्वय होना चाहिए यह सब हमारे साहित्य में लिखा गया और अपने-अपने समय के अनुकूल लिखा गया।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का स्थापना काल भारत के स्वाधीनता-संघर्ष काल के समय का है। भारतीय राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के विचार को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से यह संगठन स्थापित हुआ। इसका उद्देश्य है- ऐसे व्यक्तियों का निर्माण जो राष्ट्र प्रेमी कर्तव्यनिष्ठ, परिश्रमी, प्रामाणिक और मूल्यों की रक्षा करने वाले हों। संघ के इस विराट उद्देश्य की प्रतिपूर्ति हेतु तथा स्वयंसेवकों को वैचारिक दृष्टि प्रदान करने के लिए संघ गीत रचे गए। इन गीतों की विषय वस्तु में मातृ-वंदना, राष्ट्र-अर्चना, ध्वज-वंदन, ध्येय-चिंतन, केशव-माधव वंदना, उद्बोधन, संचलन एवं प्रासंगिक गीत प्रमुख हैं। इन गीतों के रचनाकारों ने राष्ट्र के प्रति अपने समर्पण भाव के कारण अपने नाम प्रकट नहीं किए, परंतु आज ये गीत देश के आम जन गुनगुनाते हैं।

संघ-गीत भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से ओतप्रोत हैं। यह विचार इन गीतों में उभरता है कि जिस राष्ट्र ने अपनी संस्कृति को भुला दिया, वह राष्ट्र जीवित या जाग्रत नहीं हो सकता। देशवासियों को सदैव सजग रहते हुए विराट सांस्कृतिक मूल्यों से परिचित रहने का संदेश इन गीतों में दिया गया है। परिणामस्वरूप सांस्कृतिकबोध को जाग्रत करते हुए उसकी चेतना को समृद्ध करने में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। साथ ही सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण, परिवर्धन और हस्तांतरण की दृष्टि से भी इनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। इन गीतों की विषय वस्तु में भारतीय अतीत का गौरव है, विराट भारतीय चिंतन को समर्थन है, सांस्कृतिक मूल्यों की विवेचना है तथा संस्कार निर्माण पर बल देते हुए आदर्श जीवनशैली का भी परिचय दिया गया है। ये समस्त बिंदु हमारे सांस्कृतिक विकास के कारक रहे हैं, जो चेतना का संचार करते हैं। संघ-गीतों में इनकी उपस्थिति का परिणाम यह हुआ कि भारतीय परिवेश में सांस्कृतिकबोध विकट समय में भी जीवंत रहा।

संघ की यह मान्यता रही है कि भारतीय संस्कृति दुनिया की श्रेष्ठतम संस्कृति है। हमारी किसी भी राष्ट्रीय समस्या का हल अपने सांस्कृतिक तत्वों के द्वारा ही खोजना चाहिए, क्योंकि हमारा अतीत परम वैभवशाली रहा है। भारत को संपूर्ण जगत में ज्ञान-प्रदाता राष्ट्र के रूप में जाना जाता रहा। ऐसी मान्यता है कि संसार में सर्वप्रथम ज्ञान का दीप भारतवर्ष में जला, जिस पर संसार मोहित हुआ। इन भावों की व्यंजना गीत 'जय है जगती के प्रथम राष्ट्र' में प्रकट करते हुए भारतीय संस्कृति की विशेषता को उजागर किया गया है- तेरे ही घर में प्रथम बार,/स्वर्गीय ज्ञान का दीप जला।/जिसके प्रकाश पर मोहित सा,/न्योछावर होने विश्व चला।/तेरे चरणों पर विनत विश्व,/अध्यात्म ज्ञान के अमर राष्ट्र।/जय हे जगती के प्रथम राष्ट्र।। (भारत वंदना, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ.32)

यह राष्ट्र संस्कृतियों का उद्गम स्थल है। यहाँ की हर वाणी में ज्ञान-विज्ञान मुखर रहा है। वेद, उपनिषद, गीता, रामायण के गान सदा गुंजायमान रहे हैं। पुरुषार्थ की प्राप्ति के लक्ष्य के साथ यहाँ पुरुषोत्तम

बनने की युक्ति भी उपलब्ध हुई। इन्हीं सांस्कृतिक विशेषताओं को उजागर करते हुए गीत 'हमारा प्यारा हिंदुस्तान' की उक्त पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं- यह संस्कृतियों का उदयाचल, उज्ज्वल स्वर्ण विहान।/हर वाणी में यहाँ मुखर है, गहन ज्ञान विज्ञान।/गुंजित वेद, उपनिषद, गीता, रामायण के गान।/धर्म, अर्थ, और काम मोक्ष का, है अध्यात्म विधान।/यहाँ पुरुष से पुरुषोत्तम, रचना की युक्ति प्रधान।। (रामनारायण पर्यटक, राष्ट्रधर्म के गीत, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 2009, पृ.17)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सनातन भारतीय चिंतन को अपना आधार मानता है। उसी क्रम में संघ गीतों ने भारतीय समाज के सोए आत्मविश्वास एवं मौलिक शक्ति को जगाने का उपक्रम किया है। संघ गीतों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि जब तक भारतीय मन अपनी जड़ों से नहीं जुड़ेगा, वह अपना चिर गौरव प्राप्त नहीं कर सकता। भारतीय-चिंतन विज्ञान का सम्मान करता है, किंतु एकांगी दृष्टि से नहीं। यदि सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर विज्ञान का विकास होता है तो वह सदैव श्रेयकारी होगा। 'जयघोष संस्कृति का' गीत में रचनाकार अपने भावों को इस प्रकार प्रकट करता है- विज्ञान के परों में, दे शक्ति संस्कृति की।/अध्यात्म नींव होगी, समृद्ध हिंदू-भू की।/हम विश्व के विभव की, व्याख्या नई लिखेंगे।/ जयघोष संस्कृति का हम आज मिल करेंगे।। (राष्ट्र अर्चना, अर्चना प्रकाशन, भोपाल, 2017, पृ.128)

राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर जैसे अवतारों ने देश को नैतिक संस्कार दिए। वे हमारे प्रेरणा स्रोत हैं तो सांस्कृतिक संपन्नता के प्रतीक भी हैं। सनातन धर्म की समृद्धि में महापुरुषों की वाणी और कर्तृत्व का विशेष योगदान रहा है। 'हम सब हिंदुस्तानी हैं' गीत में रचनाकार लिखता है- यह है राम कृष्ण की धरती, बुद्ध-जैन की तप:स्थली।/गीता के उद्घोषों से, गूँज रही है गली-गली।/यहाँ असुर मारे जाते हैं, सुर सम्मानित होते हैं।/मित्र सुदामा के पद को, प्रभु अश्रुधार से धोते हैं।। (रामनारायण पर्यटक, राष्ट्रधर्म के गीत, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 2009, पृ.18)

स्वयंसेवकों को अपने मूल्यों से निरंतर लगाव रखने का संदेश संघ की शाखाओं में दिया जाता है। वर्तमान समाज जिस तरह से पश्चिम मुखी आकर्षण में बँध रहा है, उसके प्रति सचेत भी किया जाता है। इन गीतों में उच्च आदर्शों को अपनाने, धन के पीछे न भागने और प्रेम की सृष्टि करने जैसे प्राचीन भारतीय संस्कार अपनाने का भाव व्यक्त हुआ है। गीत 'शाखा में संस्कारित करते' इन्हीं भावों की व्यंजना कर रहा है- आज विश्व गुरु मर्यादाएँ, एक-एक कर त्याग रहा है।/जीवन उच्चादर्श भुलाकर, धन के पीछे भाग रहा है।/विमल प्रेम से अब सिंचित कर, सामाजिकता के भाव जगाएँ।। (गीत सुधा, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ,1995, पृ.39)

सत्य, अहिंसा, क्षमा, सहिष्णुता, संयम, त्याग आदि हमारे सांस्कृतिक मूल्य शाश्वत रूप में विद्यमान रहे हैं। हमारी संस्कृति को कभी भी विदेशी आक्रांताओं से इतना खतरा नहीं रहा, जितना इस संस्कृति में जीने वालों से हुआ है। भारतीय अपनी विरासत को महत्त्वहीन समझने और वैश्विक पदार्थवादी दृष्टि से वर्तमान समय में ज्यादा आकर्षित हुआ है। वस्तुत: हम अपने अहिंसक दृष्टि से अनुभवों की भयंकरता का का विनाश कर सकते हैं, अभय के द्वारा भय को नष्ट कर सकते हैं, त्याग के द्वारा संग्रह-वृत्ति को बाधित कर सकते हैं, तब किसी की ओर क्यों जाएँ? यह घोष संस्कृति और कला का प्रतीक बने तो जीवन की भी दिशा बदल सकती है। संघ-गीतों में इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों के महत्त्व को रेखांकित किया गया है। अप्रासंगिक रूढ़ियों के बंधन से मुक्त होकर समय अनुकूल सांस्कृतिक परिवर्तन और उसका हस्तांतरण

कैसे हो? इस पर विचार किया गया है। अब समय आ गया है कि हम सांस्कृतिक आदर्शों को स्वयं के निर्माण में लगाएँ। साथ ही विश्व में भी इन मूल्यों का प्रचार करें। संघ-गीत 'हे जन्मभूमि भारत' गीत में व्यक्त भाव द्रष्टव्य हैं- जो संस्कृति अभी तक दुर्जेय-सी बनी है।/जिसका विशाल मंदिर आदर्श का धनी है।/उसकी विजय-ध्वजा ले हम विश्व में चलेंगे।/संस्कृति-सुरभि-पवन बन हर कुंज में बहेंगे।। (मातृ वंदना, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ.22)

आचार और विचार की रेखाएँ बनती है और मिटती हैं। जो बनता है वह मिटता भी है, किंतु मिट कर भी जो अमिट रहती है वह है- संस्कृति। शिक्षा संस्कृति को प्रस्तुत करने का एक अंग है। शिक्षा का संबंध आचरण के परिष्कार के साथ होना चाहिए। यदि आचरण परिष्कृत नहीं है तो संस्कृति का संरक्षण, हस्तांतरण व विस्तार संभव नहीं है। संघ की विचारधारा में स्पष्ट मान्यता है कि जिस शिक्षा के साथ अनुशासन, धैर्य, समन्वयकारी जीवन मूल्यों का विकास नहीं होता, उस शिक्षा के आगे प्रश्न-चिह्न लग जाता है। भारतीय जीवन-दर्शन विश्वकल्याण का सामर्थ्य रखता है, लेकिन उचित शिक्षा-दीक्षा के अभाव से हमारे संस्कार नई पीढ़ी तक नहीं पहुँच पाए। पश्चिमी चिंतन ने मानवता को बहुत कष्ट दिया है, पर अब समय आ गया है कि हम अपनी विरासत से प्यार करें। उन मूल्यों को पहचाने जिससे हमारा आने वाला कल समृद्ध बने। गीत 'करवट बदल रहा है देखो' में रचनाकार ने जो भावी कल्पना का चित्र खींचा है, वह अवलोकनीय है- सदियों से विस्मृत गौरव का, भारत माँ परिचय देगी।/सौम्य, शांत सुखदाई जननी, नवयुग नवजीवन देगी।/उस जीवन-दर्शन से होगा, मानव-धर्म विकास।/पश्चिम के असफल चिंतन का, निश्चित होगा ह्रास।। (संघ गीत, ज्ञानगंगा प्रकाशन, जयपुर, 2019, पृ.91)

वर्तमान समाज प्रगतिशीलता के रथ पर आरूढ़ अवश्य है, परंतु मनुष्य के आचरण में असत का प्रवेश चिंता का विषय है। सदाचार से आस्था का विचलन होने से नैतिक व चारित्रिक पतन के लक्षण हमारे समाज में दिखाई देने लगे हैं। इस समस्या का समाधान भारतीय जीवन शैली में विद्यमान है, जहाँ व्यवहार एवं आचरण को सदाचार की कसौटी पर परखा जाता है और सामाजिक प्रतिष्ठा का मापदंड भी माना जाता है। अपने दैनिक जीवन में प्रेम के साथ सात्विकता भी आवश्यक है। यह प्रेम ही जाति, भाषा, प्रांत, वर्ग आदि का भेद मिटा सकता है। संघ द्वारा भारतीय जीवन में अपेक्षा की गई है कि वह अपने जीवन में संयम आधारित जीवनशैली अपनाएँ और शुद्ध सात्विक प्रेम को अपने जीवन का अंग बनाकर आदर्श की स्थापना करे। संघ-गीत 'शुद्ध सात्विक प्रेम' में निहित स्वर इस प्रकार है- जाति, भाषा,प्रांत आदि, वर्ग भेद को मिटाने।/दूर अर्थाभाव करने, तम अविद्या का मिटाने।/नित्य ज्योतिर्मय हमारा, हृदय स्नेहागार है।/शुद्ध सात्विक प्रेम अपने, कार्य का आधार है।। (संघ गीत, ज्ञानगंगा प्रकाशन, जयपुर, 2019, पृ.91)

इस प्रकार संघ गीतों में जहाँ एक और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को महत्त्व दिया गया है, वहीं इनके माध्यम से किस प्रकार भारतीय गौरव को जाग्रत किया जा सकता है, इसकी विवेचना की गई है। इन गीतों के माध्यम से करोड़ों लोग अपने संस्कारों से परिचित हो रहे हैं, जो अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। साहित्य का लक्ष्य होता है-आदर्श विचारों का प्रसार। उस दृष्टि से संघ-गीत सांस्कृतिक भावबोध के साथ अपनी सार्थकता सिद्ध कर रहे हैं।

सम्पर्क : श्री गंगानगर (राज.)

कुँअर बेचैन

हज़ारों ख़ुशबुएँ दुनिया में हैं

जीजी की मृत्यु के पश्चात् केवल मैं और जीजा जी ही रह गए थे। घर में कोई महिला नहीं थी। मैं नौ-साढ़े नौ साल का था। चाबी-कुंजी सब मेरे हाथ में आ गई थी। माँ तो तब ही इस संसार से विदा ले गई थी जब मैं सात साल का था। पिता जी तब स्वर्गवासी हो गए थे जब मैंने ठीक से आँखें भी नहीं खोली थीं। केवल दो महीने का ही था। जीजा जी के पास तब आ गया था जब जीजी की शादी हुई थी....और मैं तब दो साल का था। जीजा जी से मेरा रिश्ता भले ही साले-बहनोई का था किन्तु वे मेरे लिए पितृवत थे। उन्होंने ही मेरा पालन-पोषण, शादी-विवाह आदि किया था। जीजी की मृत्यु जब हुई उस समय हम चन्दौसी के घट्लेश्वर गेट में रहते थे। मकान कन्हई लाल कहार का था। कन्हई लाल के पिता चंदौसी की रानी रामकली जिन्होंने अपने पति की स्मृति में श्याम सुन्दर डिग्री कॉलेज बनवाया था, उनके यहाँ काम करते थे। उन्होंने ही कन्हई लाल के पिता जी को यह मकान भेंट किया था। जीजा जी ने कायस्थान मोहल्ले के मकान को छोड़कर इस मकान को ही किराए पर लिया था। उस समय मैं पाँचवीं कक्षा में आया था। मकान के जिस पोर्शन में हम रहते थे उसके ऊपर के कमरे में ही मेरी बहन प्रेमवती ने प्राण त्यागे थे। बहन की मृत्यु के तुरंत बाद अब हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या खाना बनाने की थी। न जीजा जी खाना बनाना जानते थे और न मैं। ....

लेकिन उन दिनों के लोग बहुत सहयोगी भाव के होते थे। मोहल्लेदारी सहज रूप से ही पारिवारिक रिश्तों को जन्म दे देती थी।... हमारे घर के सामने जो रामू धोबी रहते थे वे मेरे लिए रामू चाचा हो गये थे, दूसरी तरफ जो ब्राह्मण परिवार था उसमें जो वृद्धा थीं, उन्हें मैं दादी कहता था। दो मकान आगे जो एक भुर्जी का घर था उनके बाहर वाले हिस्से में भाड़ बना था जिसमें कभी मूँगफली, कभी चने भुनते रहते थे। जिनकी सुगंध आस-पास के मकानों में भर जाती थी, वहाँ जो सफ़ेद बालों वाली प्रौढ़ा बैठी रहती थीं, उन्हें मैं ताई कहता था। आठ-दस मकान आगे जो परिवार था वह वणिक-परिवार था उसमें जो महिलाएँ थीं वे मेरी चाची-ताई थीं। इसी घर के सामने जो श्रीवास्तव (कायस्थों) का परिवार था उसके सदस्य भी मेरे भाई साहब, ताऊ, या चाचा-चाची थे। जिस मकान में हम रहते थे उसकी मालकिन को मैं जीजी कहता था। मेरी अपनी बहन की मृत्यु के बाद खाना बनाने की जो समस्या थी उसे इन जीजी ने सरलता से हल कर दिया था। उन्होंने यह प्रस्ताव रख दिया। 'तुम आटा दे जाया करना, रोटी मैं बना दिया करूँगी। ...मैं अपना खाना तो बनाती ही हूँ। चार रोटी आप लोगों की

भी उसी समय डाल दिया करूँगी, अपने लोगों के लिए ज़रा सा काम करने में क्या परेशानी है।'....उनके इस प्रस्ताव के रूप में हमें तो बिना माँगे वरदान मिल गया था।

उन दिनों हमारे घर में बाजरे का आटा रखा था। जीजा जी के गाँव सिसरका में खेती-बाड़ी होती थी। खूब सारा अनाज होता था। गेहूँ, बाजरा, मूँग, उड़द, अरहर, सरसों, चावल, गन्ना, शकरकंदी, मूँगफली आदि सभी की खेती होती थी। जीजा जी का गाँव चंदौसी नगर से चार कोस की दूरी पर था। अत: आसानी से अनाज घर में आ जाता था। जीजा जी चंदौसी में ही एक प्रिंटिंग प्रेस में नौकरी भी करते थे। सब ठीक-ठाक चल रहा था। ठीक नहीं था तो बस यह ही कि हम अब दो लोग ही रह गए थे। ... मकानदारनी जीजी ने जो प्रस्ताव रखा उसे सुनकर हमारी चिंता दूर हो गयी थी।...मैं एक छोटा कटोरदान भरकर आटा दे आता था। वे रोटी सेंक कर इसी कटोरदान में रख देती थीं।... मैं स्कूल से आता था उनके यहाँ से कटोरदान ले आता था, उधर जीजा जी भी प्रिंटिंग प्रेस से दोपहर को खाने की छुट्टी में घर आ जाते थे,... वे बाजार से दही ले आते थे। हम दही को छोटी सी मथानी से बिलोकर उसे जीरे और घी से छोंककर नमक डालकर रायता जैसा बना लेते थे। इसी में बाजरे की रोटी मीड़कर खा लेते थे। रोजाना का यही क्रम था।...

दस बारह दिन बाद की बात है। मैं स्कूल से जब आया और सीधा मकानदारनी जीजी को आवाज़ लगाते हुए उनके घर में उस कटोरदान को लेने घुसा जिसमें वे रोटी बनाकर रख देती थीं, तो वहाँ कोई नहीं था। जिधर के पोर्शन में ये दीदी रहती थीं उधर के आँगन के दूसरी ओर एक कमरा था जिसमें एक सज्जन अकेले ही किराए पर रहते थे। उन्होंने मुझे बताया कि तुम्हारी मकानदारनी जीजी को तो उनके भाई बुलाकर ले गए हैं, उनके मायके में कोई शादी है... सब लोग वहीं गाँव में गए हैं। ....

मैं स्कूल से लौटा तो मुझे बहुत तेज भूख लग रही थी। लगनी ही थी। मैं नौ साल का बालक - सुबह बिना कुछ खाए-पिए स्कूल निकल जाता था। उस ज़माने में चाय-वाय पीने का इतना रिवाज़ नहीं था। अत: मेरे पेट में चूहे दौड़ ही नहीं रहे थे, छलाँग लगा रहे थे। बड़ी आशा से मकानदारनी जीजी के पास आया था रोटी का कटोरदान लेने...मगर कटोरदान कहीं था ही नहीं.... मैं निराश होकर इस घर के उस पोर्शन में लौट आया जिसमें हम रहते थे। ..मगर मुझे तो भूख इतना सता रही थी कि आँखों के सामने केवल रोटी के ही सपने आ रहे थे। समझ में नहीं आ रहा था कि मैं अपनी भूख कैसे शांत करूँ। ...

हमारे घर के नीचे के पोर्शन में जो बरामदा था उसी के सीधी तरफ़ मिट्टी का चूल्हा बना था। मेरी जीजी प्रेमवती इसी पर खाना बनाती थीं। ऊपर छत पर अरहर की लकड़ी के गट्ठर रखे थे जिसे हम ग्रामीण भाषा में 'झम्बे' के नाम से पुकारते हैं। जब खाना बनता था तो छत पर रखे इस गट्ठर में से झम्बे की कुछ लकड़ियाँ उठा ली जाती थीं। छत पर ही एक कोने में कंडे रखे रहते थे। उनमें से भी दो-एक कंडे उसी समय लाए जाते थे। वरांडे में छत को रोकने के लिए जो एक खम्बा था उसी के सहारे एक पत्थर की सिल खड़ी रहती थी। उसी पर जीजी ताज़ा मसाला पीसती थीं। बर्तनों में एक पीतल का तसला था जिसमें जीजी आटा माड़ती थीं। मैंने उसे कई बार आटा माड़ते हुए देखा था। बाजरे के आटे को माड़ने का तरीका गेहूँ के आटे को माड़ने से कुछ भिन्न होता है, यह भी मैंने देखा था। जीजी जब बाजरे की रोटी बनाती थी तो चूल्हे पर तवे को उलटा करके रखती थी। यह रोटी चकले पर नहीं बेली जाती थी। हाथ से सँभाल कर पोई जाती थी। बार-बार हाथ को पानी में गीला किया जाता था जिससे रोटी पोए जाने के वक्त उसमें चिकनाई बनी रहे और टूटे नहीं। उलटे तवे पर पोई हुई रोटी को डालकर उसे थोड़ा गर्म होने दिया जाता था और फिर

उसे तवे से उतारकर चूल्हे की जलती आग के एक तरफ़ थोड़ी जगह बनाकर सेंका जाता था। जो चूल्हे में यह थोड़ी जगह बनाई जाती थी उसे 'घई' के नाम से पुकारा जाता है। ...ये सब मैंने तब देखा था जब जीजी मुझे चौके में बिठाकर गर्म-गर्म खाना खिलाती थी।

भूख इतनी तेज थी कि मैंने अपने आप ही रोटी बनाने का फैसला कर लिया। बाजरे की रोटी बनाते समय जैसे-जैसे जीजी करती थी वैसे ही वैसे मैंने भी करने का प्रयास किया। किन्तु देखने और करने में तो बहुत बड़ा फर्क होता है। आटा माड़ने की कोशिश की तो आटे में पानी ज्यादा पड़ गया। मैंने सूखा आटा डालकर उसे ठीक करने की कोशिश की। फिर चूल्हे पर तवे को उल्टा करके रखा। नीचे अरहर की लकड़ी को चूल्हे में रखा और दियासलाई से चूल्हा जला दिया। अब आटे की लोई बनाकर रोटी पोने का काम करना था। कितनी ही कोशिश की, किन्तु रोटी पोते वक्त ही रोटी कई टुकड़ों में बँट जाती थी। मैं अपनी भूख मिटाने के लिए जितनी ज़ल्दी रोटी बनाना चाहता था उतनी ही देरी होती जा रही थी।...

भगवान ने संसार के प्राणियों को जो पेट नाम की चीज़ दी है और उसमें जो भूख नाम की अदृश्य आग डाल दी है, जिसे लोग जठराग्नि के नाम से जानते हैं, वह इंसान से क्या-क्या नहीं करा लेती। मैं पसीना-पसीना हो रहा था और कई बार गर्म तवे पर अपना हाथ भी जला चुका था, फिर भी पेट की जठराग्नि मुझे रोटी बनाने की प्रक्रिया से विचलित नहीं कर पा रही थी... मैंने रोटी के कई टुकड़ों को ही गर्म तवे पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर डाल दिया। ...और फिर उन टुकड़ों को चूल्हे की 'घई' में सेंक-सेंककर बिना किसी दाल-सब्जी के रूखी ही खाने लगा। सच बताऊँ उस दिन अपने आप बनाई हुई इस बाजरे की रोटी, रोटी नहीं, रोटी के जले-जले टुकड़ों में जो स्वाद आया, जो मिठास महसूस हुई, वह मिठास जीवन भर फिर नहीं मिल सकी। मैंने उस दिन जाना कि अपने द्वारा किये गए टूटे-फूटे परिश्रम के फल में कितनी मिठास होती है। रोटी का एक टुकड़ा सेंकता जाता था और उसे वहीं चूल्हे के पास बैठे हुए खाता भी जाता था, फिर अगला टुकड़ा, और फिर उसके बाद अगला टुकड़ा।....कितने ही टुकड़े मैं अपने पेट में डाल चुका था ...और उधर भूख थी कि शांत ही नहीं हो रही थी। जनम-जनम का भूखा था मैं उस दिन ...

दोस्तो, आज जब थोड़ा-बहुत लिखना आया है तो एक बात तो मेरी समझ में यह आ गई है कि रचनाकार का अपना भोगा हुआ यथार्थ किसी न किसी रूप में और कभी न कभी उसकी रचनाओं में अवश्य ही आ जाता है। बचपन की यह घटना कितने दिनों बाद मेरी एक ग़ज़ल के शेर में अभिव्यक्त हुई और मेरा यह शेर देश-विदेश में दूर-दूर तक प्रसिद्ध हुआ। यह सच्चा और स्वयं भोगा हुआ शेर है-

हजारों खुशबुएँ दुनिया में हैं, पर उससे छोटी हैं
किसी भूखे को जो सिकती हुई रोटी से आती है।

मैं इधर बाजरे की रोटी जो टुकड़ों में बँट रही थी, उसे खाने का स्वाद ले रहा था और उधर आँखों में चूल्हे की लकड़ियों से उठता हुआ धुआँ वह उथल-पुथल मचा रहा था कि मत पूछिए। आँखों से पानी आँसू की धार बनकर लगातार बह रहा था, किन्तु तब मुझे ऐसा लग रहा था जैसे मैं पौराणिक काल का वह भगीरथ हूँ जो पहाड़ से गंगा निकाल कर लाया हो, जहाँ-जहाँ गर्म तवे ने हाथ जलाया था वहाँ-वहाँ की जलन भूख शांत होने के दबाव में अपने असर को कम करती जा रही थी और मुझे ऐसा आभास करा रही थी जैसे मैं वह राणा सांगा हूँ जिसने युद्ध-स्थल में दुश्मन के सैकड़ों वारों को, अपने

शरीर पर घावों के रूप में सँजोकर, अपने पराक्रम की गाथा को इतिहास का हिस्सा बना दिया हो। चूल्हा फूँकने के पराक्रम में सिर के आगे के कुछ बाल अपनी बलि दे चुके थे, किन्तु उनके बलिदान के कारण मेरा माथा ऊँचा होता जा रहा था।

जब ये सब चल रहा था तब ही अचानक जीजा जी भी दोपहर की छुट्टी में बाजार से दही लेकर आ गए थे। मुझे जब चूल्हा फूँकते हुए देखा... चूल्हे पर तवा रखे हुए, तसले में आटा रखे हुए देखा तो स्तब्ध रह गए। उन्हें नहीं पता था कि मकानदारनी जीजी अपने मायके चली गई हैं। उनके मुँह से अचानक निकल पड़ा... 'अरे ये क्या कर रहा है।?... तू और चूल्हे पर ...?... क्या हो गया है तुझे ?,...' वे मेरे पास आये और मुझे चूल्हे से उठा दिया। ..वे बोले-'तू क्यों बना रहा है रोटी ?....क्या आज जीजी ने रोटी नहीं बनाई?,.... मैंने बताया कि मकानदारनी जीजी अपने गाँव चली गई हैं। उनके भैया आये थे उन्हें लेने और मुझे बहुत तेज भूख लग रही थी। रहा नहीं जा रहा था। सो मैंने जैसे-जैसे जीजी रोटी बनाती थीं उन्हीं तरीकों तथा जीजी को याद करते हुए रोटी बनाई। ....

जीजा जी ने मुझे गोदी में उठा लिया और मेरी आँखों से बहते हुए पानी को पोंछते हुए मुझे ममतामयी आँखों से निहारने लगे। अचानक उनकी दृष्टि मेरे उन जले हुए निशानों पर पड़ गई जो मेरे हाथों में यहाँ-वहाँ दिख रहे थे। बोले-'अरे यह क्या कर रखा है?... ऐसे हाथ जला लिए?' ...मैंने उन्हें जीजा जी से बहुत छुपाने की कोशिश की थी, किन्तु छुपा नहीं पाया था।....

जीजा जी ने मुझे गोदी से उतारकर मेरे जले हुए निशानों पर घी लगाया। मैं जीजा जी के हाथों से छूटकर फिर चूल्हे के पास गया और वहाँ एक तश्तरी में रखे बाजरे की रोटी के कुछ टुकड़े उसी तश्तरी में लेकर जीजा जी के पास ले आया और कहा-'अब आप भी खा लीजिये, मैंने आपके लिए भी रोटी सेंक कर रख ली थी। ...आप भी तो भूखे होंगे।'....

जीजा जी ने मुझे कलेजे से लगा लिया और मेरे गाल पर प्यारा सा चपत लगाकर बोले-'इतना ध्यान रखता है तू मेरा....तू क्या पिछले जनम में मेरी माँ था?'...और ऐसा कहते हुए उन्होंने पहले मुझे एक टुकड़ा अपने हाथ से खिलाया और बाद में स्वयं भी स्वाद ले-लेकर खाने लगे। जैसे ये रोटी के टुकड़े, रोटी के टुकड़े न होकर अमृत में भीगे हुए किसी स्वर्गिक भोज का प्रसाद हों।

संपर्क : गाजियाबाद (उ.प्र.)

शैवाल सत्यार्थी

ढीठ बादल मचल गया है

शायद,
धरा बहुत तपी है...
पलकों में,
युग-युग की पीर ढँपी है...
आकाश से,
आँसू की पहली बूँद गिरी है...
प्राण-सीपी में,
स्वाति-बूँद झरी है...
क्षण-क्षण स-जल हो गया है
कि सूनी आँखों में,
वर्षा का कोई
ढीठ बादल मचल गया है...
धरा की तपन से,
आसमान रो दिया है-
शायद,
उसने आपा खो दिया है...
तुम्हारे
ख़त-के-मरहम का,
अभी तलक भी-
न कोई अता-पता है...
मेरे कराहते घाव
फिर उभर आए हैं
तो शायद यही
बस, यही मेरी खता है।

मंज़िल तक...

यह कदम उठे, वह कदम उठे
हम कदम बढ़ाएँ मंज़िल तक
यह पौध लगे, वह पौध लगे-
बढ़ जाएँ छाएँ मंज़िल तक!

चट्टानें आएँ, दें धोखे
दुर्भाग्य भले राहें रोके
ताकत कदमों में चलने की
फिर क्या मौके, या बेमौके?
उम्मीद उठें, उम्मीद बढ़ें-
उम्मीदें जाएँ मंज़िल तक!

यह धरती, अपनी धरती है
दुख-दर्द हमारे हरती है
इसकी ख़िदमत से क्या न मिला?
सोना-चाँदी यह भरती है
यह हाथ उठे, वह हाथ उठे-
हम हाथ मिलाएँ मंज़िल तक!

सब दुनिया दोस्त हमारी है
यह कली-कली फुलवारी है
क्या बात बड़े या छोटे की?
हर कोई मूरत प्यारी है।
इनको सजदा, उनको सजदा-
सौ-सौ दरगाहें मंज़िल तक!

संपर्क : ग्वालियर (म.प्र.)

अमित कुमार खरे

पावस के दोहे

घिर आई काली घटा, हुई सुहागन शाम।
बरसेगी बरसात तो, क्या होगा अंजाम।।

जब से यौवन को मिला, बरखा का उपहार।
अंतर्मन के साज का, झंकृत है हर तार।।

निकली नूतन कोपलें, धरती से इस बार।
कितने दिन के बाद फिर, आई मस्त बहार।।

बारिश में मध्यम पड़ी, अब सूरज की आँच।
हरियाली को ओढ़कर, धरा रही है नाच।।

अब के सावन आई है, ऐसी मस्त बहार।
नई नवेली युवतियाँ, करने लगी शृंगार।।

सूरज की बदमाशियाँ, पड़ने को हैं मंद।
मौसम भी रचने लगा, सुंदर-सुंदर छंद।।

सागर से ही माँग कर, पावन नीर उधार।
पावस ने फिर कर दिया, धरती का शृंगार।।

बादल लेकर आ गए, रिमझिम मस्त फुहार।
प्रेम नगर में हो रही, मनभावन मनुहार।।

रिमझिम रिमझिम हो रही, प्यारी सी बरसात।
कैसे काबू में रखें, हम अपने जज्बात।।

बादल क्यों समझा नहीं, अभी धरा की प्यास।
तपने का शायद नहीं, उसको है एहसास।।

धीर धरा धरती नहीं, बादल कोसों दूर।
जल्दी आने को उसे, कौन करे मजबूर।।

धुली-धुली धरती धरे, सँभल-सँभल कर पाँव।
कभी नहीं होगा कहीं, मैला मेरा गाँव।।

बाजार

जब से व्यापारी चढ़े, मंचों की दहलीज।
शब्द-शब्द बिकने लगा, बनकर सस्ती चीज।।

बना दिया है मंच को, ऊँची एक दुकान।
बाजारू सजधज यहाँ, फीके हैं पकवान।।

खुली बीच बाजार में, ऊँची एक दुकान।
असली बनकर बिक रहा, सब नकली समान।।

काव्य रसिक जो हैं नहीं, न कविता का ज्ञान।
फिर भी वो ही जानते, मंचों का विज्ञान।।

चूरन चटनी बेचकर, बन बैठे कविराज।
खुद के ही सब तख्त हैं, खुद के ही सब ताज।।

गली-गली में सज रहे, सपनों के बाजार।
ऊँची-ऊँची कीमतें, भरते हम हर बार।।

मंचों से गायब हुई, कविता नामक चीज।
जाने किसने बो दिए, ये बबूल के बीज।।

ठेका हिंदी का लिए, अँगरेजी में बात।
ऐसे ही जन कर रहे, हिंदी पर आघात।।

दुनियाभर का है सफर, गीत वही दो चार।
सुनने को मजबूर हैं, बेचारे लाचार।।

शोर शराबा खूब है, कन फोड़ू संगीत।
ऐसे में कैसे कहें, अपने मन के गीत।।

रखकर बिल्कुल ताक पर, अपने सभी उसूल।
ऊँची कीमत कंठ की, कविवर रहे वसूल।।

केवल गाना सीखकर, कविवर हुए महान।
तिकड़म पर तिकड़म करें, बस मंचों पर ध्यान।

सपंर्क : सेवढ़ा, जिला-दतिया (म.प्र.)

डॉ. दशरथ मसानिया

हिन्दी चालीसा

तैंतीस व्यंजन को गिने, ग्यारह स्वर पहिचान।
अं अः है आयोग वह, चार संयुक्त जान।।
ड़ ढ़ को मत भूलिये, हिंदी अक्षर ज्ञान।
बावन आखर जानिये, कहत हैं कवि मसान।।

जय कल्याणी हिंदी माते।
तुमको नित विज्ञानी गाते।।1
व्याकर तीनों भाग बताये।
वरण शब्द अरु वाक्य कहाये।।2
वर्णों का जब होता मेला।
संधि का है यही झमेला।3
तीन भेद संधि है भाई।
स्वर व्यंजन विसर्ग कहाई।।4
बहु तत् द्विगु अरु कर्मधराये।
अव्यय द्वन्द्व समास बनाये।।5
उपसर्ग आगे प्रत्यय पीछे।
तत्सम मूला तद्भव रीझे।।6
वाक्य की परिभाषा जानो।
सरल संयुक्त मिश्रा मानो।।7
सकल नाम संज्ञा कहलाते।
सर्वनाम बदले में आते।।8
किरिया कर्म करत है भाई।
विशेषण रंग रूप गहराई।9
अल्प अर्द्ध अरु पूर्ण विरामा।
योजक कोष्टक प्रश्न निशाना।।10
गुरु कामता व्याकरण दाता।
भाषा नियमा रचा विधाता।।11

नागरी देव लिपि है आली।
मराठी हिंदी संस्कृत पाली।।12
हिंदी बोली राज निमाड़ी ।
बुंदेली मालव सुख कारी।।13
अवधी ब्रज छत्तिस बघेली।
भोज बिहारी कनउज भीली।।14
काव्य छंद पिंगल समझाये।
भरतमुनि में रस बरसाये।15
छप्प सोरठा अरु चौपाई।
दोहा रोला बरवै भाई।।16
वर्णिक मंदा कवित्त सवैया।
घनाक्षरी दो रूप है भैया।।17
दश रस माने हिंदी मानक।
अद्भुत करुणा वीर भयानक।।18
अनुउपमा यम रूपक श्लेषा।
सुंदर काव्य अलंकृत वेषा।।19
संस्कृत पाली प्राकृत भ्रंशा।
अवहट डिंगल हिंदी वंशा।।20
तासी ने इतिहास रचाया।
पीछे रामचंद्र ने गाया।।21
आदि भक्ति अधु रीति बनाई।
चार भाग संवत में गाई।।22
खुसरो जग विद्या बरदाई।
चारों आदि कवि कहलाई।।23
रामकथा तुलसी ने गाई।
बीजक कबिरा कही सुनाई।।24
सूरा मीरा अरु रसखाना।
नंद चतुर्भुज बल्लभ जाना।।25
रामा तुलसी नाभा गाते।
अग्र हृदय प्राणा भी आते।।26
सेन भगत पलटू अरु धरमा।
सुंदर सहजो धन्ना करमा।।27
पीपा मल नानक रैदासा।

कबिरा भावा निर्गुण खासा।।28
मंझन मधु जायसी पद्मावत।
उसमन चित्रा कुतु मिरगावत।।29
भूषण चिंता केशव बोधा।
बिहारी मैथिली ठाकुर शोधा।।30
हरिश्चंद्र कवि नाट रचाया।
अधुनायुग में अलख जगाया।।31
प्रताप अंबिका बदरी मोहन।
भारतेंदु राधा नारायण।।32
मैथिली माखन रामनरेशा।
महावीर हरिओधा शेषा।।33
जयशंकर है छायावादी।
पंत निराला देवी आदी।।34
शिव तिरलोचन अरु केदारा।
शोषण प्रगती कवि की धारा।।35
युगधारा नागार्जुन गाया।
राघव राधे खंडहर भाया।।36
अज्ञेय प्रयोगवाद चलाया।
तारा सप्तक आप बनाया।।37
गीत ग़ज़ल नव छंद बनाई।
नई कविता इक्कावन आई।।38
कवि भवानी शम दुष्यंता।
सोमा शंभु नइम जगंता।।39
रमानाथ रघुवीर सहाई।
उमाकांत नवगीत चलाई।।40

राष्ट्रभाषा जानिये, करें देश का गान।
हिंदी जग में छायगी कहत हैं कवि मसान।।

संपर्क : आगर-मालवा (म.प्र.)

डॉ. संध्या शुक्ल 'मृदुल'

भारत की आन-बान-शान है हिंदी

साजे नारी के शीश ज्यों बिंदी,
विराजे भारत के शीर्ष यूँ हिंदी।
ऋषि मुनि और विद्वद्जनों के,
लेखन का शृंगार है हिंदी।

जन मानस की बोलचाल में ये,
सहज सरल औ आम है हिंदी।
संप्रेषण और संचार-प्रसार का,
सबसे सशक्त माध्यम है हिंदी।

वीणा के तारों सा झंकृत करती,
सद्साहित्य में अलंकृत है हिंदी।
कवि और लेखकों के सृजन को
कृतकृत्य करती है भाषा हिंदी।

कोकिल कंठ सी लगे कर्ण प्रिय,
मिश्री की डली सी लगती हिंदी।
सभी भाषाओं की सिरमौर बनी,
हमारी मातृभाषा कहलाती हिंदी।

विश्वबंधुत्व और एकता का भाव,
जन-जन में नित जगाती हिंदी।
नदी की पावन धार सी निर्मल,
झरने सी शीतल है भाषा हिंदी।

प्रगति के नित नये सोपान रचती,
भारत का मान है बढ़ाती हिन्दी।
जन-जन के मन में है विराजती,
देश की आन और शान है हिंदी।

संपर्क : मंडला (म.प्र.)

डॉ. रमेश कटारिया पारस

पिता जी

अपनों से जब दूर पिता जी होते हैं
बेबस और मज़बूर पिता जी होते हैं

बेटे साथ खड़े होते हैं जब उनके
हिम्मत से भरपूर पिता जी होते हैं

दादा जी से मिलने जब भी जाते हैं
थक कर के तब चूर पिता जी होते हैं

अम्मा जब भी कोई फरमाइश करती हैं
तब कितने मज़बूर पिता जी होते हैं

बेटे बहुएँ मिलकर सेवा करते हैं
ऐसे भी मशहूर पिता जी होते हैं

बच्चों के संग में बच्चे बन जाते हैं
ज़न्नत के इक हूर पिता जी होते हैं

पूरा कुनबा एक जगह जब होता है
रौशन सा इक नूर पिता जी होते हैं

हर ग़लती पर सबको टोका करते हैं
आदत से मज़बूर पिता जी होते हैं

बहन-बेटियों के लिए है प्यार बहुत
पर पाकिट से मज़बूर पिता जी होते हैं

बच्चे जब उनकी बात नहीं सुनते
हिटलर से भी क्रूर पिता जी होते हैं

उदास देखते हैं किसी को जब अपने घर में
तब ग़म से रन्जूर पिता जी होते हैं

जब कोई अच्छी कविता लिख लेते हैं
कबिरा और कभी सूर पिता जी होते हैं

सपंर्क : ग्वालियर (म .प्र .)

रश्मि शर्मा

खुद का आकाश

सहमे से वे
स्कूल की डाँट से
थोपी महत्वाकांक्षाओं से
आगे निकलने की होड़
दबाव कुछ करने का

नहीं है समय अब
कल्पनाओं को उड़ने का
प्रकृति में रमने का
नदी में कंकर उछाल
लहरों को गिनने का

पेड़ों पर चढ़
ध्यान साधने का
तितली जुगनू फूलों
संग बतियाने का

आसपास के लोगों को
समझने का
अपने सपनों को
खोजने का भी
कहाँ है समय अब

खेलकूद में पसीना बहाने का
कभी जीत कभी हार होती है
और हार सिखाती है

नजरों से गिराती नहीं
ये पढ़ने का

जिज्ञासु बन नया सीखने का
मिट्टी से जुड़ने का
बिना भय के
कुछ कर गुजरने का

वे बिना पंख के
पक्षी की तरह
घर के पिंजरे में हैं
क्या उन्हें हक नहीं है
स्वतंत्रता से अपने आकाश में
उड़ने का

एलबम

चुनती हूँ रोज़
कुछ पलों को सहेजने
यादों के एलबम में

वो बचपन की यादें
पर्त दर पर्त समायी है
और लहराती है
पौधों पर कभी फूल बन

सखियों का साथ
स्कूल कॉलेज की यादें
खेलती रहती हैं छुपन छायी
मेरी बेटी की किस्सागोई में

कभी कोई गाना भी
जुबां पर बार-बार आ
चला जाता है
डायरी के अंदर
गुलाब की पंखुड़ियाँ बन

और मन का कोना
बार-बार भीगता रहता है
इन बौछारों से
और खुशनुमा जिंदगी
बढ़ती रहती है
यादों का कारवां ले

शहर

मकानों की खड़ी हैं कतारें
गुम हैं घर
ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते
सुकून के कुछ पल

गुम हैं बच्चे
जाने कहाँ किन गलियों में
गुम हैं संवेदनाएँ
साथ का अहसास

गुम गुड्डे गुड़ियाएँ
कुल्हड़ वो मिट्टी के
शाम उठती सौंधी हवाएँ
कान में घुलते सांध्य गीत

वो खुली खिड़कियाँ
पुकारते दरवाज़े
पहचाने तो हैं
वृक्ष गलियाँ रास्ते पर
गुम है मेरा अपना शहर।

संपर्क : देवास (म.प्र.)

सतपाल 'स्नेही'

गीत

आओ चल कर देखें दो हाथों की मेहनत गाँवों में
होती है मेरी धरती की सही इबादत गाँवों में

खेत यहाँ के पूजाघर हैं, हल जैसे भगवान खड़ा
लहलहाती फ़सलें जैसे माथे पर हो मुकुट जड़ा
हरियाली से है किसान की खरी मुहब्बत गाँवों में

अमुआ की डाली पर बैठी कोयलिया के गीत यहाँ
कौआ हो या हंस सभी में एक अनोखी प्रीत यहाँ
मोर नाचता सावन लेकर आता जन्नत गाँवों में

गाँवों के यौवन पे नकली चेहरों का अधिकार नहीं
चाँदी के सिक्कों में बिकता कभी गाँव का प्यार नहीं
हर चेहरे की सुन्दरता है एक हक़ीक़त गाँवों में

घर को नहीं जलाती अपने ही चूल्हों की आग यहाँ
अपनों का ही लहू बहा कर नहीं खेलते फाग यहाँ
'स्वयं जिओ और जीने भी दो' की है संगत गाँवों में

दो

ये मिलन दो पल बढ़ा दो मैं प्रणय के गीत गा लूँ
दूरियाँ होने से पहले दीप चाहत के जला लूँ

प्रेम के संगीत को मन में सँजो तो लूँ ज़रा
गीत के हर शब्द में तुम को पिरो तो लूँ ज़रा
रूप मदमाता तुम्हारा अपनी आँखों में बसा लूँ
दूरियाँ होने से पहले....

मैं धरा का एक कण हूँ तुम चमकता संगमरमर
तुम सुधा-सागर हो प्रियवर और मैं सूखा सरोवर
इस सुधा-सागर से मैं भी घूँट-भर अमृत चुरा लूँ
दूरियाँ होने से पहले....

और थोड़ी देर रख लूँ दूर इस मन से उदासी
और थोड़ी देर सुन लूँ मधुर वाणी कोकिला-सी
ऐ मेरी मुस्कान ठहरो और थोड़ा मुस्कुरा लूँ
दूरियाँ होने से पहले....

संपर्क : बहादुरगढ़ (हरियाणा)

शेफाली शर्मा

मृत्यु

हो सकता है किसी शाम
अपने भगवान का नाम लेते हुए
प्रार्थना को जा रहे हो तुम
या लौट रहे हो काम से घर
खोल रहे हो दरवाजे पर लगा ताला
सोच रहे हो
क्या पकाया जाए खाने में
क्या देखा जाए टीवी पर
पढ़ी जाए कौन सी किताब आज रात
या फिर किसी पुल पर
टहलते हुए जब बना रहे हो
योजनाएँ भविष्य की
अचानक आ लगे कोई गोली तुम्हें

मुमकिन है किसी सुबह
तुम्हारी सुरक्षा के लिए जिम्मेदार व्यक्ति ही
इतना असुरक्षित हो जाए कि तान दे तुम पर बंदूक
किसी इतवार खोलो अपना दरवाज़ा
और पाओ कि एक गोली पर
लिखा जा चुका है तुम्हारा नाम
सुबह की सैर भी बदल सकती है
ज़िंदगी के आख़िरी लम्हे में
आख़िरी सुबह में

हो सकता है किसी रात
तुम्हारी जय-जय कार कर रहे
हजारों लोगों के बीच

वो बम भी हो
जो घर से सिर्फ तुम्हारे लिए निकला है

लेकिन ऐसी तमाम सुबहों, शामों और रातों से डरकर
तुम आज तो नहीं मर सकते
और याद रहे
गोलियों से पहले आती हैं गालियाँ।

संभावनाएँ

मेरा विश्वास है कि
ज्यादातर अपंगताएँ और निष्क्रियताएँ
शारीरिक न होकर मानसिक होती हैं

हमारे आस-पास से गुज़रतीं
ये सारी बिल्लियाँ, वो शेर हैं
जिन्होंने डरना स्वीकार किया

कोमोडो ड्रैगन का एक पूरा समुदाय
अपनी पूँछ हिलाने का इस कदर आदी हो गया
कि पूँछ कट जाने पर
उसे फिर-फिर उगा लेना, उसने मुनासिब समझा

वो सारे साँप जिन्होंने गर्दन उठाकर
फन फैलाना छोड़ दिया
हमारे लिए खाद बनाते हैं
चूहों को किसी का भय नहीं रहा
वो धड़ल्ले से लगाते हैं सेंध
खलिहानों गोदामों थालियों में

ये संभावनाएँ हमेशा रहेंगी कि किसी दिन
छतों से उतर आए शेर
निकल आएँ
गमलों से फन फैलाए साँप
और महापुरुषों की तस्वीरों के पीछे से शक्तिशाली ड्रैगन।

श्राप

हम स्त्री और पुरुष हुए
जब हमें होना था परिवार

हिंदु और मुस्लिम हुए
जब होना था भारतीय

हुए ब्राह्मण और दलित
जब मनुष्य हो सकते थे

और इस तरह
परिवारों में हुए बलात्कार
भारत की संसद में लगे नारे;
जिसमें भारत नहीं था
और जातियों ने कभी न जा सकने
का श्राप पाया।

अवशेष

जहाँ स्त्रियों के अवशेष मिले
वहाँ कारखाने थे

जहाँ पुरुषों के मिले
वो आरामगाहें थीं

जहाँ दोनों के अवशेष साथ मिले
वहाँ पुरुष कारखानों के उत्पादों पर
अपनी मुहर लगाने आये थे

और जहाँ मिले बच्चों के अवशेष
वहाँ सारी असभ्यताओं के बीच जीवन था।

संपर्क : छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

शिव नारायण जोशी

शहीद मरते नहीं बिस्मिल

एक बग्घी
पीछे केबिन में बैठा हुआ अंग्रेज़
आगे ऊँची सीट पर बैठा सईस
पुलिस की ड्रेस
एक हाथ में घोड़े की रास
दूसरे हाथ में चाबुक
हुकुम का गुलाम।
आगे कसा हुआ घोड़ा
चाबुक की मार खाता दौड़ता घोड़ा
गुलाम हिन्दुस्तान का नक्शा।

कोई शिकायत नहीं
घोड़े ने कर लिया था समझौता
अस्तबल रहने के लिए
खाने के लिए रातब
यह नागरिक डरा सहमा
गुलामों का गुलाम।

क्या इस घोड़े को
आज़ाद करवाने के लिए
सरफरोशी की तमन्ना की थी
क्या इसके लिए
सिर पर कफ़न बाँधा गया?
वह तो अपने नरक में खुश था
क्या उनके लिए जो लड़ रहे थे
आजादी के लिए अपने तरीके से
और तुम्हारे रास्ते से डरते
तुमसे घ्रणा करते थे
जिन्होंने तुम्हारे त्याग को
बलिदान को कभी समझा नहीं?
नहीं-नहीं तुम लड़े थे पूरे देश की

आजादी के लिए
देश की माटी के लिए।

1857 के बाद जो दमन चक्र चला था
गाँव के गाँव फूँके गए
खेत-खलिहान जला कर
भुखमरी और दहशत फैलाई गई
जवानी लटका दी गई पेड़ों से
इस भयानक तांडव के बाद
जो तुम्हारे जैसे सरफरोशों
की टोलियाँ निकलीं
देश में नवोदय होने लगा।

दुनिया के हर देश ने
आजादी के लिए उत्सर्ग
को पूजा है सराहा है
मज़ार पर श्रद्धांजलि दी है
पर हाय आज़ाद भारत देश के शासन
न तुम को शहीद का दर्जा मिला
न तुम्हारी चिताओं पर
लगाए गए मेले
न दी गई परिवार को पेंशन।

स्वतंत्रता संग्राम बहुतों ने लड़ा
अपने-अपने तरीकों से
पर श्रेय सत्तारूढ़ दल ने
केवल अपनों को दिया।

तुम्हारा रास्ता सही था या गलत
तुम्हारी शहादत ने आजादी के
नव जागरण को हवा तो दी थी।
हवा में आज भी गूँजते हैं
सरफरोशी के तराने
शहीद मरते नहीं बिस्मिल
दिलों पर राज करते हैं।

विशाल शुक्ल

माँ

माँ आज भी मुझे
जीना सिखाती है!
जीवन के दु:ख दर्द को
पीना सिखाती है!
बचपन की तरह वह
अब कोमलता से
हाथ नहीं पकड़ती है!
न ही मेरे शरीर को
बाँहों में जकड़ती है!
मेरे बड़े होने का भी
अहसास उसे नहीं है!
उसका अंधा प्रेम
मुझे गोद लेने के लिये
तड़पता है!
पर मेरी बढ़ती
काया और उम्र से
वह डरती है!
अब न वो मुझ पर
ममता बरसाती!
न बचपन की तरह
छाती से लगा पाती!
समय ने हमारे मध्य
विचारों के अंतर यानी
मत-मतान्तर की
कई लक्ष्मण रेखाएँ

खींच दी हैं!
हम एक नहीं अलग हैं
पर कमाल है ...
कि वो मेरे दु:खों को
अपनी दुआओं से
इस तरह हरती है!
गिर न जाऊँ कहीं
भव सागर में!
इसीलिए रोज
मंत्रों का जाप
करती है!

संपर्क : छिंदवाड़ा (म.प्र.)

दिलीप 'विद्यानन्दन'

हिन्दी तो महतारी है

भाषा केवल कैसे कह दूँ,
हिन्दी तो महतारी है।
भारत माता तव पुत्रों के,
भावों की फुलवारी है।।

माँ, मातृभूमि, मातृभाषा,
दिव्य अलौकिक सिरजनहार।
इन तीनों से उऋण कभी न,
अनुपम हैं जिनके उपकार।।

हिन्दुस्तान में रहने वाले,
हिन्दी दिवस मनाने बैठे।
हिला रही युग की आँधी,
माँ की सीख बताने बैठे।।

मारवाड़ी पहाड़ी बुन्देली,
अवधी ब्रज संग नाता है।
हर एक बोली हिन्दी की है,
हिन्दी सबकी माता है।।

हिन्दी के वर्णों की क्षमता,
कभी भूल मत जाना प्यारे।
भावों को धारण कर रखते,
श्रवण करो तो वारे न्यारे।।

हिन्दी की हर दिव्य विधा,
भूला मार्ग बताती है।
पाषाणी परिचालन में भी,
कोमल मर्म जगाती है।।

क्षेत्र और बोली विभेद कर,
हिन्दी का कुनबा मत तोड़ो।
सहज सृजन अभिप्रेरण कर,
मानवता से मन को जोड़ो।।

तकनीकी युग इंद्रजाल में,
हिन्दी-दीप जलाये रखना।
अमृत आभा पायेंगे हम,
'दिलीप' विश्वास बनाये रखना।।

सपंर्क : नाभा छावनी (पंजाब)

डॉ. ऋचा सत्यार्थी

मुझे तुमसे कुछ नहीं कहना

मुझे तुमसे कुछ कहना है...
सबसे पहले तो तुमसे/फुटपाथ पर रहने वाली
उस भिखारिन की बात करनी है
जिसका तार-तार हो गया कम्बल
इस जमा देने वाली सर्दी में
उसे, और उसके बच्चों को
थोड़ी-सी भी गरमाहट नहीं दे पाता-
लेकिन मैं/तुमसे क्या कहूँ?
क्योंकि तुम्हें/तुम्हें तो सोने और चाँदी की
खनकती आवाज़ों के सिवा
और कुछ भी सुनाई नहीं देता।

यूँ तो,
और भी बहुत कुछ तुम्हें दिखाना था...
दूर बंजर खेतों की/पथरीली जमीन पर
हल चलाते किसान के माथे से बहता
ठण्डा पसीना।
चाँदनी चौक पर हाथ फैलाए
भीख माँगता मासूम शैशव!
और किसी गंदी बस्ती के
किसी गुमनाम चौराहे पर-
नीलाम होती गरीबी!!
यह सब कुछ तो,

सब कुछ तो तुम्हें दिखना था/मगर तुम
बहरे ही नहीं, अंधे भी हो गए हो...
या शायद/तुम्हारी आँखों की परतें
अब पारदर्शी की जगह पारभासी हो गई हैं।
और चन्द कागजों की/लुभावनी चमक के सिवा
और कोई मायूसी भरी नज़र
उन्हें पार नहीं कर पाती।

मैंने सोचा था-
कि तुम्हारी आलीशान इमारत के
वातानुकूलित कक्ष से बाहर निकल
किसी खुले पार्क की/टूटी बेंच पर
या किसी सस्ते कॉफी-हाउस की
कोने वाली मेज़ पर/हम आमने-सामने बैठते
और देश को बेचने की नहीं,
सरफ़रोशी की बात करते।

और या तुम-
स्टार्सवार की नहीं/विश्व शांति की भी नहीं
उस नौजवान के टुकड़े-टुकड़े
सपनों को जोड़ने की बात करते
कल ही तो, जिसकी नौजवान उमंगों और
योग्यताओं का सौदा तुमने
पच्चीस या तीस हजार में करके,
उसके भविष्य पर एक डरावना-सा
प्रश्न चिन्ह लगा दिया है
और उसे
एक चलती-फिरती लाश में बदल दिया है!
और फिर भी कोई/अँगुली उठाकर तुम पर
ये इल्जाम नहीं लगा सकता
कि तुमने उसका कत्ल कर दिया है।
क्योंकि कत्ल तो जिस्म का होता है
और तुमने

उसके जिस्म का कत्ल कहाँ किया है?
तुमने तो-
सिर्फ उसकी/नौजवान उम्मीदों का ख़ून किया है।

मैंने सोचा था कि हम कुछ
उसके ज़ख्मों को भरने की बात करते...
लेकिन तुम/तुमसे कैसे होती
उन टूटे सपनों को जोड़ने की बात!
तुम्हारे होंठो पर तो,
स्वार्थ और लिप्सा के ताले लटके हुए हैं!

और तुम-
तुम कैसे आशफ़ाक की तरह
सरफ़रोशी की तमन्ना अपनी जुबां तक लाते?
क्योंकि तुम्हारी रगों में
आर्यों का तप्त रक्त कहाँ है?
तुम्हारी रगों में तो खून जैसा लाल
लेकिन बर्फ जैसा सर्द/ज़हर और बारूद घुला
ठण्डा पानी बह रहा है
वह भी नहीं रहा/बल्कि जम चुका है
और कभी, थोड़ी-सी आँच पाकर
पिघलता भी है, तो खौलता नहीं
सिर्फ सड़ता है/सड़ता रहता है
किसी सकरी गली के/किसी अँधेरे गड्ढे में
महीनों, बरसों और सदियों से इकट्ठे
गन्दे पानी की तरह...
नहीं, मुझे तुमसे कुछ नहीं कहना!
नहीं, नहीं-
कुछ भी नहीं कहना!!

संपर्क : उमरिया (म.प्र.)

राजेन्द्र उपाध्याय

गिलहरी

आई है बहुत दिन बाद
एक गिलहरी
बताओ तो कहाँ रही
इतने दिन
कहाँ काटी शाम कहाँ दुपहरी?

गिलहरी
कुतर रही है पत्ती एकाधहरी
आने से उसके लगती है
दुनिया भरी-भरी

वो देखो चली भरी दुपहरी
एक गिलहरी?

अब कब आओगे
आओगी अकेली
या रहेगी साथ कोई सहेली
गिलहरी!

आओ आओ
जब चाहो आओ
खेलो आँगन या बालकनी में
सुबह शाम या दुपहरी
कुतरो पत्ती हरी
गिलहरी...

दो

एक गिलहरी
कुतर रही है
हरे पेड़ों के बीचों-बीच।

रोट्री का कबाड़ बिछा है
चारों ओर कारें आ-जा रही है।
लंबी-लंबी क्रेनें कुछ उठा कुछ गिरा रही हैं।

फिर भी
चैन से बैठी
कुतर रही है कुछ
एक गिलहरी।
भरी दुपहरी!

जामुन

रोज पेड़ से पूछो
सुबह शाम
जामुन कब दोगे?

जब दोगे
अभी तो इतना बता दो
अभी कहाँ छुपा रखे हैं

तुमने जामुन अपने
मीठे और रसीले?

जल
जल को कभी न कहना चल
वो तो कभी न रुकता
चलता रहता हरदम
आज और कल

हर पल चलता जल
कल कल करता जल

हमसे भी कहता जल
रुक नहीं चल।
हर पल!

संपर्क : नोएडा (उ.प्र.)

अब 'साक्षात्कार' के अंक आप साहित्य अकादमी की वेबसाईट http://mpsahityaacademy.com पर भी पढ़ सकते हैं।

–सम्पादक

रमेश मनोहरा

सम्मान की भूख

जो सम्मान का भूखा है यदि उसे सम्मान मिल जाए तो वह खुश हो जाता है बल्कि उसको सम्मान देने से खून में 100 ग्राम की वृद्धि जरूर हो जाती है फिर वो अपने इष्ट मित्रों को कहता फिरेगा देखो मेरा सम्मान मेरी प्रतिभा को देखकर हुआ, भले ही वो प्रतिभा में शून्य हो मगर अपने को प्रतिभाशाली समझता है। ऐसे एक नहीं ढूँढ़ने पर कई हजार मिल जायेंगे। जो अपनी प्रशंसा खुद करेगा, यदि उन्हें सम्मान नहीं मिलेगा तो वे बुरी तरह से नाराज हो जायेंगे। नाराज होना विरासत में मिले संस्कार हैं। अत: उन संस्कारों को वे छोड़ नहीं सकते हैं क्योंकि छोड़ना उनके स्वभाव में नहीं। ऐसे लोग स्वभाव बदल भी नहीं सकते हैं फिर चाहे समाज उनकी लचर प्रतिभा को अच्छी तरह जानता हो मगर उनकी। उम्र को देखकर आलोचना नहीं कर पाता है। अत: ऐसे लोगों की पीठ पीछे आलोचना करना आदमियों का स्वभाव है। कुछ लोग उनकी बुजुर्गीयत का ख्याल रखकर आलोचना करने में हिचकिचाते हैं। मगर वे उनकी प्रतिभा का भ्रम पाले हुए हैं फिर भी वे सम्मान के बहुत भूखे हैं। यदि उनके सामने कोई सम्मान उनके कनिष्ठ को मिल जाए तब उसकी योग्यता पर वे सवाल खड़े कर देते हैं। सवाल के साथ हंगामा भी खड़ा कर देते हैं। बेचारा आयोजक तो कुछ बोलता नहीं है, वरिष्ठ होने के नाते चुपचाप उनके कड़वे बोल सुन लेता है।

तो जनाब ये वे लोग हैं जो सम्मान के बहुत भूखे हैं। शहर में भी दौलत प्रसाद ऐसे आदमी हैं जो सम्मान के बहुत भूखे हैं। मेरे शहर में कहीं भी सम्मान समारोह का आयोजन हो यदि उनका सम्मान न किया गया, तब वे बिगड़ैल बैल की तरह बिगड़ जाते हैं, जिसे सँभालना बहुत ही मुश्किल होता है। अत: ऐसी स्थिति में शहर में सम्मान होना भी बंद हो गये हैं। जो कराते हैं, वे उनका सम्मान पहले करते हैं। ऐसे में शहर में एक समय सम्मानों का ऐसा दौर आया था कि दौलत प्रसाद जी के आये दिन सम्मान होने लगे उन्हें इतना सम्मानित कर दिया कि उनके सम्मान की भूख मिट सके फिर भी सम्मान की भूख नहीं मिटी। अत: सम्मान के लिए अब भी लालायित रहते हैं/अप्रत्यक्ष रूप से उनका कहना है, मैं शहर में वरिष्ठ हूँ अत: हर सम्मान पाने का हकदार मैं ही हूँ/अपने आगे किसी को वे समझते नहीं थे जब भी वे अपनी बात कहने खड़े होते थे। श्रोता यदि उसका परिचित है तो उनकी बात को सुनकर मन ही मन मुस्काते थे, मगर उनकी मुस्कान का

कोई असर उन पर नहीं पड़ता था/असर पड़े भी कैसे जबकि उन्होंने अपने को ही सर्वोच्च मान लिया था। अपने को सर्वोपरी बताते थे। उन्हें कहाँ से सम्मान मिला है, यह बताते फूले नहीं समाते थे और जब सुनने वाले की सहने की शक्ति खत्म हो जाती थी, तब चुपचाप खिसक लेते थे।

अब इनकी गाथा का वर्णन जितना भी करो, नई-नई गुत्थियाँ खुलती जायेंगी। मगर बात का अंत नहीं होगा। जब भी लोग किसी चौराहे पर आकर मिलते, बातचीत में दौलत प्रसाद जी का जिक्र छिड़ जाता था। उस चौराहे पर निंदा की बारिश होने लगती थी। फिर अंतहीन बहस छिड़ जाती थी। ऐसे में लोगों को चर्चा का विषय मिल जाता था। अत: शहर के वे चर्चित आदमियों में गिने जाते थे। मगर एक समय ऐसा आया कि उनकी चर्चा भी बंद हो गई। जब भी बाजार में कहीं वे दिख जाते, उनसे लोग कन्नी काटकर दूसरा रास्ता पकड़ लेते थे। उन्हें मान्यता देना कम कर दिया था। कभी मुठभेड़ भी हो जाती थी तब क्षणिक बात करके उनसे पीछा छुड़ा लेते थे। सम्मानित होने का सुख उन्हें बहुत आनन्दित करता था। शहर में सबसे अधिक सम्मान उनका हुआ, इस बात को वे बढ़ा चढ़ाकर कहा करते थे। उनका बस नहीं चला सम्मानित होने का यह सुख वे गिनीज बुक में भी रेकार्ड करना चाहते थे। मगर ऐसा नहीं हुआ फिर एक दिन ऐसा भी आया कि वे अकेले पड़ गये।

शहर में लोगों के सम्मान अब भी होते हैं। अब वे कहीं भी बुलाए नहीं जाते हैं, उनके सामने कल के नौसिखिये का सम्मान होता था, तब वे टुकुर-टुकुर देखा करते थे। कई अवसर ऐसे भी आये कि उन्हें बुरी तरह डाँट दिया गया। मगर सम्मान की भूख अब भी उनको नागिन की तरह डस रही है।

सम्पर्क : *रतलाम (म.प्र.)*

रमाकान्त ताम्रकार

गाँव बुला रहा है

मन्नू इसी चिन्ता में लगा रहता कि अपने पिता का हाथ कैसे बँटाए और अपनी पढ़ाई भी कर सके लेकिन पिता कहते, पहले तू पढ़ ले फिर काम-धाम की सोचना। उसके पिता सोचते कि मन्नू पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बन जायेगा। पर उन्हें नहीं मालूम था कि इस मुल्क में बड़े आदमी का बेटा बड़ा आदमी बनता है, अफसर का बेटा अफसर, नेता का बेटा नेता बनता है, मजदूर तो सदियों से मजदूर ही रहा है। उसके भाग्य में कोई परिवर्तन नहीं होता है वह चाहे कितनी भी मेहनत करे, उससे कुछ भी नहीं होता।

उसके पिता को बुखार आ गया जिसके कारण घर की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी थी। उसके पिता को रोज 200 रुपये पगार के रूप में मिलते। सेठ रविवार की छुट्टी के भी पैसे काट लेता था। इस पर भी उसका यह एहसान होता कि वह पिता जैसे छोटे लोगों को रोजगार देता है। माँ भी थोड़ा-बहुत काम करके कुछ कमा लेती। जिससे जैसे-तैसे घर का खर्चा चल जाता। त्यौहार पर भी थोड़ी अच्छी सब्जी और रोटी मिल जाती/पकवान खाए तो अरसा हो गया।

मन्नू को उसके पिता ने एक जगह चौकीदारी पर लगा दिया। वह 12 वर्ष का बच्चा था जिसके कारण उसे 50 रुपये की मजदूरी मिलती थी। वह मेहनत तो बड़े लोगों जैसे ही करता परन्तु उसकी पगार में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई। इधर उसका ध्यान पढ़ाई से भी हटने लगा।

मन्नू के पिता टीकमगढ़ के पास एक गाँव के निवासी थे, परिवार में अच्छी खासी जमीन थी किन्तु उन्हें खेती करना सुहाता न था इसलिए वे मुम्बई बड़े आदमी बनने की इच्छा को लेकर चले गए। किन्तु वहाँ एक मिल में मजदूर बनकर रह गए। वहीं मिल के पास झोपड़-पट्टी में एक झोपड़ी किराए पर ले ली थी। जिसमें उसके माता-पिता, छोटी बहिन और वह एक ही कमरे में रहते थे।

वह झोपड़-पट्टी वाला मोहल्ला किसी परिवार से कम नहीं था। एक-दूसरे को लोग सहयोग करते रहते थे क्योंकि इस झोपड़-पट्टी के लोग जानते थे गरीबी क्या है, और गरीब का कोई नहीं होता। होता है तो केवल गरीब ही गरीब का साथी होता है।

पिता को डेंगू हो गया, जिसके कारण कुल जमा राशि भी खर्च हो गई थी। पिता अशक्त हो गए थे। अब उनका मन गाँव लौटने का होने लगा था। वे उसकी माँ से हमेशा कहते-''भाग्यवान मुझे गाँव बुला

रहा है...चलो अपन गाँव चलकर खेती करेंगे ... वहीं पर मजदूरी करेंगे।'' पर उसकी माँ हमेशा मना कर देती। कहती- ''यहाँ पर सब अच्छी सुविधाएँ हैं, बच्चों को पढ़ाने-लिखाने की, दवा-दारू की और यहाँ पर कम से कम रोजगार तो है, मेट्रो है, गार्डन हैं, साधन हैं... गाँव जाकर क्या मिलेगा ...अब खेती में भी तो लागत चाहिए, वह कहाँ से आएगी? ...तुम्हारे परिवार वाले तो तुम्हें कुछ देंगे नहीं।'' उसके पिता माँ की बात सुनकर कुछ नहीं बोलते पर उसे लगता पिता की आँखों में गाँव आ बसा है, इसलिए पिता की आँखें गाँव का सपना देख रही हैं। कुछ दिन तक ऐसे ही चलता रहा।

मन्नू को एक दिन पता चला कि चीन से कोई बीमारी भारत आई है जिसके कारण लोगों का जीना मुश्किल हो रहा है। उसे पता चला कि कोरोना नाम की यह बीमारी बहुत ही खराब है जिसमें आदमी को अपनी जान के संकट के साथ ही, साथ में रह रहे लोगों की जान का भी संकट होता है। उसे समझ में आया कि यह छूत का रोग है। उसने पिता को यह बात बताई। तो उसके पिता ने कहा ''बेटा अपनी माँ को समझा ... अपन गाँव चलें ...गाँव जैसा स्वर्ग कहीं पर नहीं है। ये सब शहर वालों के चोचले हैं।'' पर उसकी माँ जाने को तैयार नहीं हुई।

अचानक एक दिन पूरे देश में इस कोरोना नाम की बीमारी से लड़ने के लिए जनता कर्फ्यू लगाया गया जिसमें देश की जनता को बहुत मजा आया किन्तु यह क्या दो दिन बाद ही इसकी सच्चाई सामने आ गई। अब रोज काम करने वालों के पास काम ही नहीं रहा तो फिर घर कैसे चलता। सरकार की ओर से घोषणा की गई कि जो जहाँ है वह वहीं रहे, सरकार उनके खाने-पीने की व्यवस्था करेगी किन्तु घोषणा पर घोषणा होती गईं पर उनके पास रोटी नहीं आई। जिसके इंतजार में लोग भीतर से टूटने लगे। कोई कुछ भी समझ नहीं पा रहा था कि अब क्या किया जाये। पूरी झोपड़-पट्टी में उदासी भरा माहौल छा गया।

धीरे-धीरे मुंबई को भी इस बीमारी ने अपनी चपेट में ले लिया। चारों ओर इस बीमारी को लेकर त्राहि-त्राहि मची हुई थी। खाने-पीने तक का अकाल हो गया। पिता को सेठ ने एक सप्ताह का वेतन देकर कहा था कि अब वह अपनी मिल बंद कर रहा है क्योंकि उसके पास वेतन देने के लिए पैसे नहीं हैं।

मन्नू के पिता ने वापस अपने गाँव जाने की तैयारी की पर उसकी माँ पिता की बात को नहीं मान रही थी। इस पर पिता ने कहा ''मैं अपने बच्चों को लेकर गाँव जाऊँगा तुम्हें चलना हो तो चलो अन्यथा यहीं रहो।'' तब उसकी माँ ने कहा था ''बस, रेल सब बंद है कैसे जाओगे।'' मन्नू के पिता के सामने यह विकराल समस्या उत्पन्न हो गई थी कि यहाँ पर खाने के लाले पड़ने लगे हैं। यहाँ रहते हैं तो मरना है और 1000 कि.मी. दूर गाँव पैदल जाते हैं तो भी मरना है। वे सोच में पड़ गए। अब क्या किया जाए। वे सोच रहे थे पड़ोसी भी कितने दिन सहयोग करेंगे। उनकी भी तो यही हालत है। झोपड़-पट्टी के लोगों ने पलायन शुरू कर दिया। साधन न होने के बावजूद भी वे लोग पैदल ही अपने गाँव जाने को तैयार हो गए। उसके पिता को भी लोगों ने कहा कि ''सब इकट्ठे होकर गाँव चलते हैं। एक-दूसरे का सहारा रहेगा और धीरे-धीरे अपने घर पहुँच जायेंगे।'' इस पर भी उसकी माँ गाँव जाने को तैयार नहीं हुई। एक दिन उसके गाँव के लोगों का आखिरी जत्था जाने को तैयार हुआ। मन्नू के पिता ने साफ शब्दों में कह दिया कि ''अब गाँव का ही सहारा है तुम लोगों को चलना हो चलो अन्यथा मैं अकेला ही चला जाऊँगा।'' इसके बाद उसकी माँ भी तैयार हो गई। माँ ने रास्ते के लिए खूब सारे रोटी और प्याज रख लिये थे ताकि रास्ते में यह खाकर

अपनी भूख मिटा सकें।

सामान समेटा जाने लगा। छोटी बहिन की गुड़िया उसने रख ली पर उसके खेल का सामान वह न रख सका क्योंकि इस सफर में केवल जरूरी सामान लेकर ही जाना था। हम सबको हाथ में कुछ सामान पकड़ कर पैदल ही जाना था। माता-पिता ने अपने सिर पर सबसे ज्यादा सामान रखा और कुछ सामान हमने भी पकड़ा और गाँव की ओर निकल पड़े। हम अपने दोस्तों से आखिरी बार भी मिल नहीं पाये। हमारे साथ सावन चाचा, रम्मू चाचा, झम्मू काकी, सरजू भैया, पहलवान कक्का न जाने कितने लोग, जीवित इंसान महिला-पुरुष की शक्ल में थे। ऐसा लगा जैसे हम ही नहीं पूरे देश के मजदूर एक अंजाने भय से अपने गाँव की ओर दौड़ने लगे हैं। जैसे-जैसे हम लोग आगे बढ़ते गए हजारों की संख्या में लोग अपने गाँव जाने के लिए मिल रहे थे।

गाँव कल तक अशिक्षित था, साधनविहीन था, अपने पराए लग रहे थे, वही गाँव आज विपत्ति के समय सबको अच्छा लगने लगा। सब अपने-अपने गाँव की ओर पैदल ही निकल पड़े। कुछ के पास साइकिल थी, कुछ के पास मोटर साइकिल थी। सब अपने-अपने साधन से जल्दी से जल्दी गाँव पहुँचना चाहते थे। गाँव में रहने वाले परिजन अब उन्हें अपने लगने लगे क्योंकि अब उन्हीं का आसरा था।

गुड्डी थोड़ी दूर पैदल चलने के बाद थक गई पर सबको हाथ में सामान लिये देखकर कहती- ''मैं पैदल चलूँगी।'' गुड्डी के पैर लाल हो गए तब उसको मन्नू ने अपने कंधे पर बिठा लिया। थोड़ी दूर जाने पर मन्नू भी थक गया तो माँ ने गुड्डी को अपने कंधे पर सामान सहित ले लिया। माँ तो माँ होती है। वह इतना बोझ लेकर चली जा रही थी, उसके भी पैर जवाब दे रहे थे पर बच्चों के बोझ से गृहस्थी का बोझ ज्यादा था। पूरे काफिले ने नाले नुमा नदी के पास रुककर खाना खाया, पानी पिया और थोड़ा सुस्ता कर फिर आगे बढ़ चले। चलते-चलते मन्नू भी बहुत थक गया, चलते नहीं बन रहा था तब पिता ने उसे अपनी गोद में उठा लिया। पिता कितने ताकतवार थे, यह मन्नू ने पहली बार जाना। सबको गाँव पहुँचने की जल्दी थी।

अचानक एक जगह पुलिस की गाड़ी आकर रुकी और हम लोगों पर लाठियाँ भाँजने लगी। उनका कहना था कि- ''तुम लोग लॉकडाउन में घर से क्यों निकले।'' वे हमारी बात मानने के लिए तैयार ही नहीं हुए और सबके ऊपर 144 धारा के अन्तर्गत केस लगाने की बात करने लगे। तभी कोई नेतानुमा व्यक्ति आया और उसने पुलिस को समझाया। मीडिया भी आ गया और हम लोगों से बातचीत की। मीडिया तो टीआरपी बढ़ाने के लिए कुछ भी कर सकता है। हम लोग रातों-रात हीरो बन गए थे। पर हमारी ओर ध्यान कोई नहीं दे रहा था।

झम्मू काकी को अचानक पेट में दर्द हुआ। माँ ने उसको देखा और पिता को कुछ बताया। जत्थे की कुछ महिलाओं को इकट्ठा करके सबने झम्मू काकी को चारों से घेर लिया। पता चला झम्मू काकी की डिलेवरी हो गई है, उनको लड़का पैदा हुआ। पूरा जत्था थोड़ी देर रुका और फिर अगले सफर पर जाने को तैयार हो गया। झम्मू काकी भी अपने छोटे बच्चे और सामान को लेकर सफर पर चल पड़ी। ममता में कितनी शक्ति होती है। वह केवल माँ ही जानती है।

हम लोगों को मुंबई से गाँव तक जाने में जितने भी जिले की सीमायें पड़तीं सबमें भरपूर दिक्कतों

का सामना करना पड़ता। पर हम लोग तो बस चले जा रहे थे और चले जा रहे थे। लोगों के पैर फट गए थे, मन ने जबाव दे दिया, शरीर ने जबाव दे दिया, एक-एक कदम भारी हो चला था फिर भी एक आस थी, गाँव पहुँचना है, वो भी जल्दी से जल्दी। हम बच्चों की भी हालत बहुत खराब थी, पैर सूज गए थे पर हम अपनी माँ से केवल यही पूछते-कितनी दूर और जाना है माँ!'' वह कहती बस आ ही गए। माँ ने पिता से कहा- ''अब चला नहीं जा रहा है, यदि साइकिल होती तो सामान उस पर रख देते।'' परिवार की दशा देखकर पिता अंदर से टूट रहे थे। उन्होंने कुछ सोचा और कहा- ''ठीक है कुछ व्यवस्था करते हैं अभी तो रात काफी हो गई है, थोड़ा आराम करते हैं।'' पर उनकी आँखों में नींद नहीं थी। वे जल्दी उठ गए और न जाने कहाँ से एक साइकिल लेकर आ गए। पूछने पर टाल गए। उन्होंने साइकिल पर गुड्डी को बिठाया, सीट पर मन्नू को, कैरियर में सामान बाँधा उस पर माँ को बिठाया और खुद साइकिल घसीट कर चलाने लगे। लेकिन माँ और सामान साइकिल पर बन नहीं पा रहे थे। तभी एक गाँव के पास हम सबने देखा कि श्मशान में एक व्यक्ति को लेकर आए हैं। उसकी अर्थी के बाँस बाहर फेंक दिए गए थे। पिता उठा लाए और कैरियर पर उन बाँसों को बाँधकर बैठने लायक जगह बना ली थी। हम लोगों का खाना भी खत्म हो गया था। गुड्डी ने कहा-माँ भूख लगी है। माँ और पिता एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। तभी पिता ने देखा श्मशान में एक जगह कुछ लोग दोने में मिठाई वगैरह रखकर चले गए हैं। वे धीरे से वहाँ गए और एक दोने को उठाकर लाये और बच्चों को खिला दिया।

मन्नू ने देखा एक व्यक्ति अपनी बूढ़ी माँ को अपनी पीठ पर लादकर नंगे पैर चला आ रहा है तो दूसरी ओर लोगों के चलते-चलते पैर फट गए थे। एक-एक कदम भारी पड़ रहा था। पिताजी के पैर भी चारों ओर से दरक चुके थे, फिर भी लोग बदहवास भागे जा रहे थे। न भूख की चिंता, न दर्द की चिंता केवल गाँव पहुँचने की धुन और फिर पहुँच कर कभी गाँव न छोड़ने की धुन, सबको सवार थी, रेला का रेला चला जा रहा था। कोई सुनने वाला नहीं था उनका दर्द, उनकी परेशानी। लोग मीडिया में केवल अपनी वाह-वाही हेतु फोटो छपवा रहे थे, समाचार प्रकाशित करवा रहे थे लेकिन जमीन पर लोग बेहाल और परेशान थे, केवल परेशान।

गुड्डी से अब चला नहीं जा रहा था, माँ भी डगमगाने लगी थी क्योंकि साइकिल पंचर हो गई थी तो उस पर मन्नू के पिताजी ने सारा सामान रख दिया था लेकिन दो बच्चों को लेकर चलना भी तो कठिन काम था। माँ अडिग चट्टान की भाँति अपने बच्चों को सीने से लगाए चली जा रही थी।

सामने एक नदी देखकर काफिला रुक गया। 3 दिनों से लोगों ने नहाया धोया ही नहीं था। लोगों को भूख भी लगी थी लेकिन पेट भरने का कोई साधन नहीं था। हम सब नहा के फुर्सत हुए तो भूख ने जोर मार दिया। गुड्डी रोने लगी तब पिता जी ने नदी से ही तीन मछलियाँ पकड़ीं और फिर सामने के मंदिर से माचिस लाकर लकड़ियाँ बीनकर उनको सेंका। हमने कभी मछली खाई ही नहीं थी किन्तु मछली यदि नहीं खाते तो भूख से मर जाते। हम सबने आँख बंदकर मछली खाई जिससे शरीर में चेतनता आई। थोड़ी देर विश्राम कर हम लोग फिर निकल पड़े। हम लोग चलते-चलते लगभग 800 किलोमीटर तक आ चुके थे। अब हमारा गाँव आने वाला था। वहाँ तक पहुँचने के लिए एक या दो दिन की यात्रा शेष थी।

गुड्डी और मन्नू का मनोबल टूट गया, लोगों की परेशानियाँ देखकर। कितने ही बुजुर्ग लोग अपने

माता-पिता को गोद में उठाए जा रहे थे, कितने लोग अपने बीमार परिजनों को गोद में उठाए थे, साथ में सामान भी। कैसा भयानक मंजर था यह। कभी सोचा ही नहीं था कि हम लोग अपने ही देश में बेगाने हो जाएँगे। कोई हमारी सुध लेने वाला भी नहीं था। माँ ने रोते हुए हम लोगों को ढाढस बँधाया कि बस हम लोग पहुँचने ही वाले हैं। हम लोग भी चल पड़े।

आज हम अपने जिले की सीमा में पहुँचने वाले हैं, ऐसा पिताजी ने बताया। सीमा पर पहुँचते ही हम लोगों को वहाँ उपस्थित पुलिस ने रोक लिया और पूछा कहाँ से आ रहे हो/तब पिता जी ने बताया ''साब हम मुंबई से पैदल चल कर आ रहे हैं।'' इस पर उस पुलिस वाले ने कहा- ''वापस जाओ। मुंबई में सबसे ज्यादा कोरोना फैला है। तुम लोग यहाँ आकर यहाँ भी कोरोना फैलाओगे क्या?''

नहीं साब हम लोग ठीक हैं आप हमारा चैक-अप करा लीजिए। पिताजी ने कहा।

''कैसे चैकअप करा लें अभी तो साधन भी नहीं हैं।''

उसकी डाँट सुनकर पिताजी रोने लगे और कहने लगे ''साहब हमारा गाँव आ गया है हम लोगों को जाने दो।'' पर वह पुलिस वाला तनिक भी नहीं पिघला। वह कहने लगा- ''यदि तुम लोग कोरोना लेकर आए होगे तो हम लोगों की नौकरी खतरे में पड़ जायेगी। हमारा ट्रांसफर हो जावेगा। तुम लोग वापस जाओ, मैं तुम लोगों को जिले में घुसने नहीं दूँगा। पिताजी के सामने अँधेरा छा गया, घनघोर अँधेरा। कितनी मुश्किलों से तो हम लोग गाँव पहुँचे हैं और ये हमें हमारे गाँव से ही भगा रहे हैं। पिताजी ने बहुत अनुनय-विनय उस पुलिस वाले से की। वह माना नहीं बल्कि पिताजी को दो लट्ठ भी मार दिये। यह देखकर मन्नू को गुस्सा आ गया। वह पुलिस वाले पर पिल पड़ा। पुलिस वाले ने उसे भी दो थप्पड़ जड़ दिये।

पिताजी मन ही मन सोचने लगे ये लोग ऐसे नहीं मानेंगे पर हम अपने गाँव जाकर रहेंगे। पिताजी ने सभी से कहा- ''अब हम यहीं बैठकर अनशन करेंगे, यहीं बैठकर घंटी और थाली बजाकर कीर्तन करेंगे। कोई के कान में तो जूँ रेंगेगी।'' उनकी बात सब लोगों ने मान ली।

दो दिनों तक यह सब चलता रहा आखिर जिला कलेक्टर, क्षेत्रीय नेताजी मुख्यमंत्री के कहने पर पहुँचे। और अंत में उनको गाँव जाने की अनुमति दे दी गई। यह शर्त रखी गई कि गाँव के स्कूल में 14 दिनों तक क्वारेंटाइन होना पड़ेगा और डॉक्टर की टीम शहर से आकर तुम सबको चैक करेगी।

सब अपने-अपने गाँव की ओर बढ़ने लगे। पिताजी ने जैसे ही अपने गाँव की सीमा में पैर रखा वैसे ही वे भावविह्वल होकर रोने लगे और जमीन पर ऐसे लोटने लगे जैसे कोई वर्षों बिछड़ा हुआ परिजन मिला हो। सच ही तो है जन्मभूमि धरती हमारी माता है उससे बिछड़ कर कोई कितने दिन रह सकता है।

संपर्क : जबलपुर (म.प्र.)

रामबरन शर्मा

रामलीला

दीपावली का त्यौहार अपना सौन्दर्य बिखेर कर चला गया। गाँव के गली, मुहल्लों में चर्चा का एक ही विषय था- रामलीला। गाँव में रामलीला का आयोजन कई दशकों से हो रहा था। वह मनोरंजन के साथ सामाजिक समरसता और गाँव की संस्कृति का मुख्य आकर्षण बन गई थी। दूसरे गाँव से आने वाले दर्शकों की कोई कमी नहीं थी। लोगों में गजब का उत्साह था। रामलीला की तैयारी प्रारंभ होने लगी। कौन से पात्र इस वर्ष नए बनाए जाएँगे, पुराने पात्रों में किन लोगों को रखा जाए और किसे बदला जाए, यह निर्णय होना शेष था।

पात्रों का चयन बड़ा कठिन कार्य था। पात्रों को निरंतर अभ्यास कराया जाता था। अभिनय में जो लोग खरे नहीं उतरते, उन्हें बाहर का रास्ता दिखा दिया जाता। कुछ लोगों को अधिक उम्र के कारण भी अभिनय छोड़ना होता था। कई बार एक ही पात्र के कई दावेदार होने के कारण विवाद की स्थिति पैदा हो जाती। पर रामलीला मण्डल के सदस्य मिलजुल कर समझौता कर लेते।

वैसे जब से टेलीविजन ने गाँव में पाँव पसारे तब से रामलीला के प्रति लोगों की रुचि कम होने लगी। पर फिर भी उसका होना गाँव में आवश्यक माना जाता। रामलीला के मुखिया हैं-जमुना पटेल। पिछले वर्ष उनका लड़का विनोद राम बना था। उसके श्रेष्ठ अभिनय की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। गाँव की रामलीला को मुरैना में मेला रंगमंच पर अवसर मिला। जहाँ विनोद को श्रेष्ठ अभिनय के लिए सम्मानित किया गया। इससे गाँव की मूँछें और अधिक ऊँची हो गईं।

शाम को जमुना पटेल की चौपाल पर सभा हुई। इसमें पात्रों का चयन किया जाना था। पर गाँव के कई लोग सभा में नहीं आए। लखुआ मेहम्बर कहीं नहीं दिखे। उनके मुहल्ला की चिरैया भी नहीं थी। लोग आपस में कानफूसी करने लगे। लखुआ के न आने का कारण किसी को समझ में नहीं आया। लोग अपने-अपने तरह से अटकलें लगा रहे थे। लखुआ कई वर्षों से माली बनता था। उसके नाम पर सबकी सहमति थी। पंचों ने सुझाव दिया कि लखुआ को बुलवाया जाए पर यह बात जमुना पटेल को रास न आयी। अपनी बात रखते हुए बोले-'माली बनने हमारे पास छप्पन लोग हैं। हम काहू की खुशामद नाहीं करेंगे। रामलीला लखुआ के भरोसे थोड़े ही होती है। ऐसे तो... कई लोगनि....कब तक मूड़ पर रखें रहेंगे।' ज्ञान सागर व्यास ने सुझाव दिया कि एक बार फिर से सभा बुलाई जाए और सब भाईचारे के साथ आपस में मिलजुलकर कार्य करें।

जमुना पटेल ने दूसरी बार सभा बुलाई। गाँव में एक साथ दो रामलीला कैसे होंगी? सबने अपने-अपने विचार रखे। पर एक गाँव में दो रामलीला इससे अधिक लोग दु:खी थे। गाँव की एकता खण्ड-खण्ड हो गई दूसरे गाँव वालों को मुँह बताने लायक नहीं रहे। अंत में ज्ञान सागर व्यास ने लखुआ मेहम्बर से सुलह करने का सुझाव दिया।

व्यास जी की बात सुनकर जमुना पटेल आपे से बाहर हो गए-'तो क्या हम लखुआ के मौड़ाए राम बनावें। जिन कौन से वेद में लिखी है कि ओछी जाति के राम बनेंगे। घोर कलियुग आइ गयो। व्यास जी की मति तो सठियाई गई है। मेरे जियत तो ऐसो नहीं होगो। जाई जैसे दिखे वैसो करें।'

व्यास जी ने पुन: समझाना शुरू किया-'सुनो पटेल! राम ने निषादराज को गले लगाया, शबरी के बेर खाये, पर कहीं ऊँच-नीच की बात नहीं हुई। हमें राम के चरित्र को जीवन में उतारना चाहिए। ऐसा कोई भी कार्य अनुचित है जिसके कारण गाँव की एकता भंग हो जाए।'

जमुना पटेल पुन: भड़क उठे- 'लखुआ को मौड़ा राम बनैगो तो हमारा विनोद का भाड़ झौंकेगो। व्यास जी लगत है कि ओछी जाति वालों ने तुम पर जादू-टोना करि दओ।'

बिना किसी निर्णय के सभा एक बार फिर भंग हो गई।

विनोद का मन अपने पिता जमुना पटेल की बातों से बहुत दु:खी था। उसने पिता को समझाने का प्रयास किया, पर कोई सफलता नहीं मिली। वह अपने आप को गाँव की एकता में बाधक मानने लगा। पूरा गाँव दो फाड़ हो गया-ऊँची जाति और ओछी जाति। सबको जातीय सम्मान की चिंता सताने लगी। जाति का सम्मान गाँव की एकता से बड़ा हो गया।

जमुना पटेल और लखुआ मेहम्बर ने अपनी-अपनी तैयारी शुरू कर दी। सुभाष अपनी जातिवालों से चंदा लेने लगा। जाति का सवाल था इसलिए उसे धन संग्रह करने में कोई परेशानी नहीं हुई। जमुना पटेल ने पूरी ताकत झौंक दी। वह नहीं चाहता कि दूसरी रामलीला उसकी रामलीला से श्रेष्ठ हो। इसलिए उसने भी बाहर से कलाकर बुलाने का निर्णय लिया। पूरे गाँव में सबसे अलग था-विनोद। सब अपनी जिद पर अड़े थे। पर विनोद साहस, संयम और संस्कारों का संगम था। वह इतनी शीघ्र अपनी हार मानने वाला नहीं था। उसने ऊँची जाति वाले लोगों को अपने पक्ष में कर लिया। यह संख्या कम थी, किन्तु विनोद का साहस बढ़ गया। उसके कहने पर लोगों ने लखुआ मेहम्बर से बात की। वहाँ से स्पष्ट संदेश था-'यदि सुभाष को राम बना दिया जाये तो गाँव में एक रामलीला हो सकती है। इससे कम पर कुछ भी संभव नहीं।'

लखुआ के पक्षधरों का मानना था कि ओछी जाति के होने के कारण उनसे कोई सुलह नहीं करेगा। वे खुद भी सुलह के लिए तैयार नहीं थे। पर विनोद मन ही मन कोई कठोर निश्चय कर चुका था। धर्म संस्कृति और इतिहास जैसे विषयों का उसने कम उम्र में ही गहन अध्ययन कर लिया था। रामलीला में राम बनने में उसकी कोई विशेष रुचि नहीं थी, वह पिता का मन रखने के लिए राम बनता था। अपने सम्मान की तरह वह दूसरों के सम्मान की भी चिंता करता था। सुभाष की प्रतिभा को वह भली-भाँति समझता था।

विनोद के अथक प्रयासों से रामलीला के लिए जमुना पटेल की चौपाल पर तीसरी बार सभा हुई। यह सभा अन्य सभाओं से भिन्न थी। यह पूरे गाँव की सभा थी। इसमें विनोद स्वयं लखुआ मेहम्बर और सुभाष को बुलाकर लाया था।

सभा प्रारंभ हुई। सुभाष जानता था कि उसे लोग राम बनाने के लिए सहमत नहीं होंगे। इसलिए सबसे पहले वही बोला-'पंचजनों! हमारे पिता कई सालों से रामलीला में माली बनते रहे हैं। इससे बढ़कर उन्हें दूसरा काम कभी नहीं मिला। हमारी जाति में भी पढ़े-लिखे हैं, कई प्रतिभाशाली हैं। पर उनको कभी राम, लक्ष्मण, दशरथ, जनक बनने का अवसर नहीं मिला। इसी भेदभाव के कारण गाँव में दो रामलीलाएँ होंगी। यदि हमें भी समान अवसर मिले तो कोई समस्या नहीं है। लोग आपस में बहुत बातें कर चुके थे। जमुना पटेल तो सभा में शामिल ही नहीं हुआ। ज्ञान सागर व्यास ने विनोद से कहा कि 'तुम ही अपना पक्ष रखो।'

विनोद ने बड़े आदर भाव से कहा-'यदि आप सब मुझसे सहमत हैं तो सुभाष को राम बनाया जाये। मैं उसकी प्रतिभा का सम्मान करता हूँ। यही गाँव व समाज के हित में है।'

कुछ ना-नुकुर के बाद सभी ने विनोद के निर्णय को स्वीकार कर लिया।

विनोद के व्यक्तित्व से सुभाष बहुत प्रभावित हुआ। उसे लगा कि वह हिमालय जैसे विराट व्यक्ति के पास है। उसके सम्मान को रखना आवश्यक है। यह कैसा उदार व्यक्ति है।

अचानक सुभाष ने निवेदन किया 'नहीं विनोद भैया! राम बनने के काबिल तो आप ही हो। मुझे कोई दूसरा काम दे दो।'

'तो तुम लक्ष्मण बनोगे।' ऐसा कहकर विनोद ने सुभाष को गले लगा लिया। सभा में से कोई बोला-'राम-लखन की सुन्दर जोड़ी।'

सम्पर्क : मुरैना (म.प्र.)

अभिषेक लाडगे

उपहार

दीवाली के दीये जल चुके थे। शीत ऋतु ने अपनी दस्तक दे दी थी। हल्की-हल्की ठंड पड़ना शुरू हो गई थी। दोपहर का समय था। काशी अपने बकरे-बकरियों को बाहर आँगन में बाँध रहा था ताकि बाड़े की सफाई कर सके। काशी की पत्नी उनके लिए भूसा चूनी मिलाने में व्यस्त थी। बकरा-बकरी भूसे की तरफ देख मैं... मैं... कर रहे थे।

काशी उन्हें रोज गाँव में चराने ले जाता। आज भी वह उन्हें चराकर घर लौटा था। उसके बाद काशी मेहनत-मजदूरी करने गाँव या जिले की तरफ निकल जाता, लेकिन कभी मजदूरी का काम मिलता और कभी नहीं। उसकी आमदनी इतनी नहीं थी कि दो पैसे जोड़े जा सकें। बस घर चल जाए यही बहुत था।

बकरे-बकरियों को भूसा देने के बाद गिरजा आँगन में झाड़ू देने लग गई, तभी उसे साइकिल पर डाकिया अपने घर की तरफ आता हुआ नजर आया।

अजी सुनते हो! डाकिया बाबू हमारे घर की तरफ ही आ रहे हैं, लगता है कोई संदेशा लाए हैं।

काशी ने बाड़े की सफाई छोड़ चिट्ठी बाबू को देखा, न जाने किसका संदेशा आया है।

कुछ ही पल में डाकिया आँगन के सामने आ पहुँचा।

'राम-राम डाकिया बाबू।'

'राम-राम चाचा।'

'क्या कोई संदेशा लाए हो?' काशी ने पूछा।

'हाँ चाचा। नहीं तो मैं यहाँ क्यों आता?'

'आओ-आओ अंदर आओ।'

काशी ने आँगन में धरी (रखी) खटिया बिछा दी। आँगन के बगल से ही इमली का पेड़ था, जिसकी छाया आँगन तक फैल जाती थी।

'अरे यहाँ खड़ी क्या ताक रही है? जा डाकिया बाबू के लिए पानी लेकर आ।'

गिरजा झोपड़ी के अन्दर गई और गिलास तथा लोटा भर पानी लेकर आ गई।

'लो बेटा पानी पियो।'

डाकिया बाबू ने पानी पीकर गिलास नीचे रख दिया।

'अब बताओ बेटा किसका संदेशा लाए हो।' काशी ने पूछा।

'चाचा आपकी बिटिया का संदेशा आया है।'

यह सुन गिरजा बोली- 'बेटा सब कुशल मंगल तो है ना!'

'अरे चाची पहले चिट्ठी तो पढ़ लूँ, फिर पता चले आपकी बिटिया ने क्या संदेशा भेजा है?'

'हाँ-हाँ बेटा जरा जल्दी पढ़ दे। हमारी एक ही बिटिया है, बड़े लाड़ प्यार से हमने उसे पाला है। बस उसी की चिन्ता-फिकर लगी रहती है।'

डाकिया ने अँगुली से चिट्ठी का लिफाफा फाड़ा और चिट्ठी को चारों तरफ से खोलने के बाद पढ़ा-

प्रिय माँ और बाबू

आपको सादर प्रणाम।

मैं यहाँ सकुशल हूँ और ऐसी ही आशा आपके लिए भी करती हूँ। आपके दामाद मेरा खूब ख्याल रखते हैं। सासू माँ भी मुझे बेटी की तरह प्यार करती हैं। यहाँ सब सकुशल हैं।

मुन्ना भी एक वर्ष का होने जा रहा है इसलिए हमने उसकी पहली वर्षगाँठ मनाने का कार्यक्रम रखा है। खूब सारे मेहमान घर पर आएँगे।

मुन्ने की खुशी के मौके पर माँ-बापू आपको भी उसे आशीर्वाद देने आना है। मैं चाहती हूँ कि आप दो दिन पहले ही आ जाएँ, इस खुशी में सहभागी होने के लिए। मुझे आशा है कि आप जरूर आएँगे। इस पत्र को आपके प्रेम के साथ बंद करती हूँ।

आपकी प्रिय बेटी

राधा

पत्र सुन काशी और गिरजा की आँखों से खुशी के आँसू उमड़ पड़े। भगवान तेरा लाख-लाख शुक्र है, हमारी बेटी सुखी है। प्रभु उसे हमेशा ऐसे ही सुखी रखना।

'अच्छा चाचा चलता हूँ, मुझे गाँव में और भी घरों में चिट्ठी बाँटने जाना है।'

'बेटा चाय पीकर जाते!' गिरजा ने कहा।

'चाची अभी नहीं, फिर कभी। आज थोड़ा जल्दी में हूँ। '

डाकिया के जाने के बाद-

'मैं तो अपने नाती के जन्म दिन पर जरूर जाऊँगी।'

'हाँ-हाँ तुम्हें कौन रोक रहा है! मैं भी तो तुम्हारे साथ जाऊँगा। उसे देखे बिना पूरा एक साल हो गया है।'

काशी ने कहा- 'देखो न गिरजा समय कैसे बीत गया! पता भी न चला। आज हमारी राधा भी एक बच्चे की माँ हो गई है।'

राधा हमारी जब छोटी थी, तब बकरियों के बच्चों के साथ खेला करती थी और जब मैं शाम को घर आता तो कैसे दौड़कर मेरे पास आती थी। पूछती-'बापू मेरे लिए क्या लाए? मेरा झोला छीन टिफिन खोलकर देखती। उसे पता रहता था मैंने उसके लिए खाने का सामान जरूर लाया होगा। ...और तुम्हें याद है जब मैं रोटी बनाती थी तो कैसे मेरे पास बैठकर नन्हीं-नन्हीं रोटी बनाकर चूल्हे पर सेंका करती थी। गिरजा हमारी बेटी ने कितने प्यार से हमें चिट्ठी भेजी है। हमें अब उसके पास जाने की तैयारी करना

चाहिए। अब दिन ही कितने रह गए हैं, हमारी नाती की पहली वर्षगाँठ में।'

...लेकिन राधा के बापू हमारे पास तो इस समय कुछ भी नहीं है। जो कुछ रुपए जोड़े थे, वह भी खर्च हो गए। अब किस मुँह से बेटी की ससुराल जाएँगे? हमारे नाती का पहला जन्म दिन है, कुछ उपहार तो लेकर जाना ही होगा। नहीं तो राधा के ससुराल वाले ताना मारेंगे- 'देखो न मायके वाले खाली हाथ चले आए।'

'वैसे भी हम बेटी से मिलने इतने दिनों बाद जा रहे हैं, सबके लिए कुछ न कुछ लेकर जाना ही होगा। सभी के लिए कपड़े मिठाई और नाती के लिए सोने या चाँदी की कोई चीज तो लेनी ही होगी।' गिरजा ने कहा। यदि हम जन्मदिन में नहीं गए तो राधा समझेगी माँ-बापू ने मुझे जिन्दगी भर के लिए पराया कर दिया।

यह सब बातें कर दोनों की आँखें भर आयीं। वे सोचने लगे रुपए का इन्तजाम कहाँ से होगा?

तभी काशी की नजर बकरों पर गई। उसने गिरजा से कहा- 'क्यों न हम अपने दोनों बकरों को बेच दें!'

...लेकिन बकरे तो हम हर साल ईद के त्यौहार पर बेचते हैं और अभी ईद को छः महीने बाकी हैं। इस वक्त इनकी कीमत कुछ खास नहीं मिलेगी। यदि हम इनको भी बेच देंगे तो हमारा घर खर्च कैसे चलेगा? और वैसे भी तुम्हें कभी काम मिलता है, कभी नहीं। यही रुपए घर खर्च में काम आते हैं।

'गिरजा अगर हम यह सब सोचते रहे तो राधा की ससुराल नहीं जा पाएँगे और हमें वहाँ जाना जरूरी है।'

'हाँ तुम ठीक कह रहे हो। हम अपना गुजारा जैस-तैसे चला लेंगे।'

'गिरजा मैं सोच रहा हूँ कि आज ही बकरों को हटा बाजार लेकर जाऊँ। आज शनिवार का दिन भी है। आज के दिन मण्डी के पास जानवरों का बाजार लगता है। वहाँ हमारे बकरों के अच्छे दाम भी मिल जाएँगे। '

'चलो पहले भोजन कर लो, वहाँ न जाने कितना समय लग जाए।'

गिरजा ने भोजन परोसा। भोजन कर काशी ने खूँटे से बकरों की रस्सी खोल दी। एक हाथ में रस्सी और दूसरे में झोला पकड़कर वह हाट की तरफ चल पड़ा। बकरे भी मैं-मैं करते हुए उसके पीछे-पीछे चल दिए।

रास्ते में उसे टीकाराम मिला। 'राम-राम काशी भाई! इन बकरों को लेकर कहाँ जा रहे हो?'

'भाई हाट लेकर जा रहा हूँ, बेचने के लिए।'

'...लेकिन तुम तो अपने बकरे ईद के समय बेचते हो। अभी उन्हें क्यों बेच रहे हो?'

'अब क्या बताऊँ टीका भैया! राधा बिटिया का पत्र आया है। उसके बेटे का पहला जन्म दिन है। हमें भी आमंत्रित किया है। जाना तो पड़ेगा। हमारे नाती का पहला जन्मदिन जो ठहरा। इसलिए वहाँ जाने के लिए रुपए की जरूरत आ पड़ी है। लिहाजा इसलिए इन बकरों को बेचने हाट जा रहा हूँ।'

हाट पहुँचकर काशी बकरों को लेकर सड़क किनारे खड़ा हो गया। कुछ ही देर में इक्का-दुक्का ग्राहक बकरों की कीमत पूछने आने लगे।

'भाई क्या कीमत है?'

'दस हजार रुपए।'

'दोनों के छः हजार दूँ।'

'नहीं भाई, यह दाम बहुत कम है, अब तुम ही बताओ कितने में दोगे?'

'भाई नौ हजार से कम में न दूँगा। ईद के समय एक बकरा सात-आठ हजार रुपए का बिकता है।'

'अरे भाई ईद की बात अलग है और अभी ईद में आधा साल बाकी है। तब तक इनको पालना तो पड़ेगा!'

'यह छः हजार लो और दोनों बकरे दे दो।'

'नहीं भाई, मैं न दूँगा। आप दूसरे बकरे देख लो।'

इस तरह बकरों का उचित दाम ना मिलने के कारण काशी का सौदा किसी ग्राहक से नहीं पट पाया। काशी को वहाँ खड़े-खड़े शाम हो गई। सभी अपने-अपने जानवरों को लेकर घर लौटने लगे। काशी भी घर वापसी का सोचने लगा, तभी एक और ग्राहक उसके पास आया।

'कैसे दिए हैं बकरें?'

'दस हजार के दोनों।'

'सात हजार दूँ?'

'नहीं भाई, यह तो बहुत कम हो जाएँगे?'

'तुम कितने में दोगे?'

'अगर आपको चाहिए तो एक हजार कम दे देना।'

'नहीं, मैं इतने नहीं दे पाऊँगा।' कुछ देर मोलभाव करने के बाद सौदा आठ हजार रुपए में तय हो गया।

'काशी ने अपने बकरों के सर पर प्यार-दुलार भरा हाथ फेरा और उनकी रस्सी ग्राहक को थमा दी। काशी ने रुपयों को गमछे में लपेटकर झोले में रख लिया और खुशी-खुशी घर के लिए लौट पड़ा। प्रसन्न मुख होकर वह घर पहुँचा।'

'गिरजा ओ गिरजा।'

'अरे तुम आ गए। बड़े खुश दिख रहे हो। लगता है बकरों की अच्छी कीमत मिल गई।'

'अच्छी तो नहीं पर हाँ ठीक-ठाक मिल गई। आठ हजार के दोनों बकरे दे दिए।'

'चलो ठीक है समय पर जो मिल जाए, वही बहुत है।'

'गिरजा अब हम अपनी बेटी की ससुराल ठाठ से जा सकेंगे।'

'हाँ। तुम सही कहते हो।'

'अब हम अपने नाती के जन्मदिन पर ढेर सारा सामान ले जाएँगे।'

'चलो अब भोजन कर लो, दिन भर के थके हो।'

रात्रि भोजन के बाद अपनी बेटी के विषय में बात कर दोनों सो गए।

दूसरे दिन सुबह-'गिरजा आज तुम दोपहर का भोजन जल्दी बना लो। आज ही हम बाजार जाकर सामान ले आएँ। अब दिन ही कितने बचे हैं, आज 22 तारीख हो गई है, देखते-देखते 25 तारीख भी आ जाएगी।'

गिरजा ने जल्दी-जल्दी घर का काम पूरा कर लिया। दोपहर का भोजन कर वे बाजार चले गए। बाजार पहुँचकर उन्होंने कई दुकानें घूमकर सामान की खरीददारी की। खरीददारी करते-करते उन्हें शाम हो गई।

चलो हमने सबके लिए कुछ न कुछ ले लिया है। अब कोई यह न कहेगा कि राधा के माँ-बापू उनके लिए कुछ भी लेकर नहीं आए हैं। नाती के लिए भी हमने-अच्छे से अच्छा उपहार लिया है। कपड़े, चाँदी की पायल, कड़े और जंजीर (चेन), राधा की सास के लिए साड़ी व दामाद के कपड़े खरीद लिए हैं। मिठाई हम वहीं से खरीद लेंगे। अभी खरीदेंगे तो खराब हो जाएगी। देखों बातें करते-करते घर भी आ गया, रास्ते का बिलकुल ही पता न चला।

घर की चिटकनी खोल उन्होंने अन्दर सामान रखा। कुछ देर सुस्ताने के बाद काशी बोला-'सुनो तुम उपहार का सारा सामान एक थैले में जमा लेना और दूसरे थैला में अपने कपड़े। हम कल ही राधा की ससुराल जाएँगे।

'क्या बेटी की सुसराल दो दिन पहले पहुँचना ठीक रहेगा?' गिरजा ने कहा।

'ठीक तो नहीं है पर राधा ने कितने प्यार से हमें पहले बुलाया है। शायद उसे हमारी याद ज्यादा आती हो। जन्मदिन के दिन वह बहुत व्यस्त रहेगी और हम उससे सही तरीके से मिल भी नहीं पाएँगे। पहले जाएँगे तो वह भी हमसे अच्छे ढंग से मिल लेगी और हम भी। ...और राधा की ससुराल वाले ऐसे नहीं हैं जो हमें देखकर मुँह बनाएँ।'

'जैसा तुम ठीक समझो।' गिरजा ने कहा।

रात को ही गिरजा ने उपहार का सारा सामान एक थैले में जमा किये और दूसरे थैले में अपने और काशी के कपड़े।

दूसरे दिन दरवाजे में ताला जड़ और शेष बचीं अपनी बकरियों को पड़ोस में रहने वाली अम्मा को सौंप वे गाड़ी पकड़ने के लिए चल दिए। कुछ ही क्षण में मोटर भी आ पहुँची। दोनों खुशी-खुशी बस में चढ़ गए और अपना सामान मोटर के अन्दर बनी रेक पर रख दिया। वे फिर कुर्सियों पर बैठ गए। एक के बाद एक पड़ाव आते चले गए। बस यात्रियों से भरती खाली होती रही। इस बीच गाड़ी में बैठे गिरजा और काशी की आँख लग गई। कुछ देर आराम करने के बाद वे उठे तो करीब तीन घंटे बाद उनका गंतव्य स्थल भी आ पहुँचा।

गिरजा अपनी गद्दी से उठ अपना सामान समेटने लगी। उसे एक थैला तो मिल गया लेकिन दूसरा न जाने कहाँ गुम हो गया? दूसरा थैला न मिलने के कारण गिरजा और काशी घबरा गए। उन्होंने बस कंडेक्टर से कहा, भाई हमारा एक थैला कहीं दिखाई नहीं दे रहा है। हमने इधर ही ऊपर रखा था।

परिचालक बोला-'आपको अपने सामान का स्वयं ध्यान रखना चाहिए था। बस में कितने लोग चढ़ते-उतरते हैं, अब कौन कैसा है यह किसी के चेहरे पर थोड़े ही लिखा होता है। इसलिए हमने बस के अन्दर लिख रहा है-अपने सामान की रक्षा स्वयं करें।'

काशी और गिरजा दुखी मन से बस से उतरे। वे सोच रहे थे- हम बेटी की ससुराल किस मुँह से जाएँगे? जिस थैले में उपहार का सामान था, वही चोरी हो गया। अब क्या करें? हमारे पास इतने रुपए भी नहीं कि दुबारा उपहार कर सामान ले सकें। सिर्फ घर वापसी का किराया भर है। अगर हम इन रुपए से उपहार का सामान खरीद लें तो घर वापस नहीं लौट पाएँगे और बेटी से रुपए लेना ठीक नहीं लगेगा। वो क्या सोचेगी?

'क्या घर वापस लौट जाएँ? नहीं-नहीं! बेटी हमारा बड़े प्यार से इन्तजार कर रही होगी। ससुराल वाले उसे ताने मारेंगे-देखो बहू के मायके से कोई नहीं आया! मुझे तो कुछ समझ नहीं आ रहा है।' गिरजा ने कहा।

तभी एक भिखारी उनके पास आया। बाबू जी गरीब की कुछ मदद करो। मेरा लड़का बहुत बीमार है। उसकी हालत देख काशी ने उसे पाँच रुपए दे दिये।

भगवान आपका भला करे। ऐसा कहकर वह वहाँ से चला गया। भिखारी को देख काशी के दिमाग में एक विचार आया, वह गिरजा से बोला-'क्यों न हम भी भीख माँग लें, जिससे हम अपने नाती के लिए उपहार ले सकेंगे। इधर हमें कोई जानता भी नहीं है।'

'नहीं-नहीं लोग देखेंगे तो क्या सोचेंगे?'

'अरे इधर हमें कौन पहचानता है और हम यह सब सोचते रहे तो अपने नाती के लिए कोई उपहार नहीं ले पाएँगे।'

गिरजा ने अपनी बेटी और अपने नाती का विचार कर काशी की बात मान ली। वे दोनों एक सस्ती सराय में अपना सामान रख शहर में भटक-भटक कर भीख माँगने लगे। कोई-कोई ने तो उनको दुत्कार दिया लेकिन कई उनका दुखी चेहरा देख भीख देते रहे। भीख माँगते-माँगते उन्हें रात हो गई और वे वापस सराय लौट आए। भीख में मिले पैसे उन्होंने गिने। कुल चार सौ अस्सी रुपए निकले। यह तो बहुत कम हैं। इसमें तो सिर्फ नाती के कपड़े ही आ पाएँगे। अब क्या करें? हम कल भी भीख माँगना पड़ेगी। हमारे पास कल का दिन और है। परसों हम दोपहर तक राधा की ससुराल पहुँच जाएँगे। रात का भोजन कर वे सो गए। सुबह होते ही गिरजा तथा काशी शहर की गलियों और बाजारों में भीख माँगने निकल पड़े। सुबह से शाम तक भीख माँगते-माँगते दोनों के पाँव दर्द से भर उठे। 'अब हमें सराय वापस चलना चाहिए। गिरजा बोली।'

'हाँ तुम ठीक कहती हो। आज हमने अच्छी भीख माँग ली है।' काशी बोला।

सराय पहुँचकर वे भीख में मिले रुपए और सिक्कों को गिनने बैठ गए। कुल मिलाकर पाँच सौ तीस रुपए निकले। दोनों का मन आनन्द से भर उठा।

अब हमारे पास कल और आज की भीख मिलाकर एक हजार दस रुपए हो गए हैं। अपने पास बचे हुए दौ सौ रुपए मैं और मिला दूँगा तो हो गए बारह सौ दस रुपए। किसी को उपहार भले न दे पाएँ, कम से कम हम अपने नाती को तो अच्छी भेंट दे सकते हैं। सुबह होते ही काशी और गिरजा ने सराय में स्नान कर नए कपड़े पहने। सराय वाले को सौ रुपए देकर वे अपना सामान उठाकर वहाँ से बाजार पहुँचकर उन्होंने अपने नाती के लिए नए कपड़े व चाँदी के कड़े आदि सामान खरीदे।

'सुनो हम राधा की ससुराल वालों को कुछ नहीं दे पा रहे हैं, कम से कम मिठाई तो दे ही सकते हैं।' गिरजा बोली।

'हाँ तुम ठीक कहती हो। खाली हाथ जाना अच्छा नहीं लगेगा। हम मिठाई खरीद लेते हैं।' काशी ने कहा।

सामान को एक झोले में रख वे अपनी बेटी की ससुराल चल पड़े। वहाँ पहुँचकर राधा अपने माँ-

बापू को देख बड़ी प्रसन्न हुई। 'माँ-बापू आप तो पहले आने वाले थे!'

'बेटी, हम तो दो दिन पहले ही आ जाते लेकिन तेरी माँ के पाँव में अचानक मोच आ गई थी। यही कारण रहा कि हम पहले नहीं आ पाए।'

तभी राधा की सास और दामाद भी आ पहुँचे। दामाद ने अपने सास-ससुर को प्रणाम किया।

'जुग-जुग जियो बेटा।' काशी व गिरजा ने उसे आशीर्वाद दिया।

राधा की सास तब गिरजा से बोली-'बहन आपको यहाँ पहुँचने में कोई तकलीफ तो नहीं हुई?'

'नहीं बहन हम बड़े आराम से यहाँ पहुँच गए।' गिरजा बोली।

'राधा जा, अपने माँ-बापू के लिए जलपान की तैयारी कर'-सास बोली।

राधा जी माँ कहकर स्वल्पाहार लाने रसोई में चली गई। इस बीच सभी एक-दूसरे से बड़े प्यार से मिले और शाम को मनाए जाने वाले जन्मदिन की तैयारी में जुट गए। शाम होते-होते सारा घर मेहमानों से भरने लगा। मुन्ना के एक वर्षायु के होने की खुशी में केक काटा जाने लगा। सभी राधा और उसके बेटे को बधाई देते हुए साथ में लाए अपने उपहार उन्हें प्रदान करने लगे। राधा के माँ-बापू ने भी अपने नाती को उपहार प्रदान कर साथ में ढेर सारी दुआएँ प्रदान कीं।

तब ही मेहमानों में सम्मिलित एक व्यक्ति बोला-क्या बहू के माँ-बाप भिखारी हैं? कल ही मैंने इन दोनों को भिक्षा में दस रपए दिए थे। मेरी आँखें धोखा नहीं खा सकतीं।

धीरे-धीरे यह बात सभी को कानों तक पहुँच गई। जब यह बात राधा के कानों में पहुँची तो स्तब्ध रह गई। उसने अपने माँ-बाप से पूछा-'मैं आपके बारे में यह क्या सुन नहीं हूँ? आप भीख माँग रहे थे? सब आपको भिखारी समझ रहे हैं।'

राधा की बात सुन गिरजा और काशी की आँखों में आँसू बहने लगे। उन्होंने अपनी बेटी को पूरी बात बताई कि कैसे उनका उपहार का थैला चोरी हो गया और नाती के लिए दुबारा उपहार खरीदने के लिए भिक्षाटन करना पड़ा।

यह सुनकर राधा की आँखों से आँसू बहने लगे। वह सबके सामने बोली-यह तो एक माँ-बाप का प्यार है जो अपने बच्चों की खुशी के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार रहते हैं, चाहे उन्हें भीख ही क्यों न माँगना पड़े। यह उनका प्यार ही था जो अपने नाती के उपहार के लिए उनको यह सब करना पड़ा। आज उनका सम्मान मेरी नजर में और भी बढ़ गया है। आए हुए सभी मेहमानों की आँखें भी यह सुनकर नम हो गईं और उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखने लगे।

राधा उनके गले लगकर रोने लगी।

सम्पर्क :भोपाल (म.प्र.)

पुरुषोत्तम गौतम

कन्यादान

केशव जी मिश्र और राकेश दुबे की मित्रता सहपाठी के रूप में आरम्भ हुई थी, जो क्रमशः घनिष्ठता में बदलती गई और धीरे-धीरे वे दोनों सगे भाइयों की तरह सम्बद्ध हो गए। इस मैत्री का आरम्भ शिक्षा महाविद्यालय से हुआ था, जब ये दोनों अपने-अपने विद्यालयों से शासकीय कोटे से बी.एड. करने आये थे। केशव जी महानगर के ही एक कन्या विद्यालय में अध्यापक थे, और राकेश दुबे यहाँ से पचास कि.मी. दूर एक कस्बे में उत्कृष्ट विद्यालय में अँग्रेजी भाषा के अध्यापक थे। पारिवारिक और सामाजिक समारोहों में भी दोनों का एक-दूसरे के यहाँ आना-जाना चलता था। समग्र में, यहाँ मित्रता अब तक स्थाई पारिवारिक रूप में बदल चुकी थी।

राकेश और शरद दो भाई थे। राकेश के पिताजी प्रधानाध्यापक के पद से सेवानिवृत्त हुए थे और लगभग दो वर्ष पूर्व उनका देहावसान हो गया था। छोटे भाई शरद की स्कूली पढ़ाई समाप्त हो गयी थी, अब उसे कॉलेज में प्रवेश दिलाना था। इस संबंध मे राकेश ने केशव जी से परामर्श किया और दोनों ने निश्चय किया कि शरद को विज्ञान महाविद्यालय में बी.एस.सी. (कम्प्यूटर साइंस) के प्रथम वर्ष में प्रवेश दिलाया जाए। शरद का प्रवेश हो गया, स्थानीय अभिभावक के रूप में केशव जी मिश्र का नाम और पता आवेदन में भर दिया। शरद को महाविद्यालय के शासकीय छात्रावास में भी प्रवेश दिला दिया गया। शरद मेधावी और परिश्रमी विद्यार्थी था। उसकी बौद्धिक क्षमता बहुत अच्छी थी, किन्तु वह चुलबुला और किंचित मनचला युवक था। शैक्षिक पृष्ठभूमि के परिवार से आने के कारण वह महाविद्यालय की पाठ्येतर गतिविधियों में भी सक्रिय भागीदारी करता था। परिचर्चा और वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेते रहने के कारण उसने अपनी कक्षा में ही नहीं, समूचे महाविद्यालय में अपनी विशिष्ट पहचान बना ली थी।

वर्ष में एक निश्चित दिन सभी शैक्षणिक संस्थाओं में पर्यावरण दिवस का आयोजन होता है। इसी दिन महाविद्यालय में समस्ति कक्षाओं के चुने हुए छात्रों के बीच एक परिचर्चा का आयोजन किया गया था। शरद भी वक्ताओं में था। एक सुधा नाम की छात्रा बी.कॉम. प्रथम वर्ष में पढ़ती थी, उसका भाषण सर्वश्रेष्ठ माना गया और इसके लिए उसे पुरस्कृत किया गया। दूसरे दिन महाविद्यालय परिसर में शरद ने उसी छात्रा को देखा और उसके पास जाकर कुछ अशोभनीय टिप्पणी कर दी। सुधा कुछ नहीं बोली और चुपचाप आगे बढ़ गई। इसके पश्चात् शरद ने एक-दो बार और टोका-टाकी की तो सुधा बहुत उत्तेजित हो गई, और उसने शरद को

अच्छा? पाठ पढ़ाने की चेतावनी दे दी। दूसरे दिन जब शरद कॉलेज परिसर में था, तभी बाहर के तीन युवाओं ने उसे पकड़ लिया और बुरी तरह उसकी पिटाई लगा दी। कुछ वरिष्ठ छात्रों ने मामले को शांत कराया, किन्तु बात महाविद्यालय के प्राचार्य तक पहुँच गई। दोनों को अपने चेम्बर में बुलाकर पूछ-ताछ की, तो यह सिद्ध हुआ कि इस पूरे प्रकरण में शरद ही दोषी है। प्राचार्य ने शरद के स्थानीय अभिभावक के नाते केशव मिश्र को इस प्रकरण में चर्चा के लिए बुलाया। केशव जी ने शरद और सुधा को बुलवाकर प्राचार्य जी के समक्ष शरद से क्षमा याचना करवाई और मामला शांत हो गया।

शरद, केशव जी का बहुत सम्मान करता था। सुधा वाले प्रकरण में वह बहुत लज्जित हुआ था, और कई दिनों तक केशव जी के घर नहीं गया। केशव जी ने इस प्रकरण की चर्चा शरद के बड़े भाई राकेश से नहीं की, और सबकुछ सहज रूप से चलता रहा। इसी बीच शरद का जन्म दिन आ गया। राकेश ने पत्र द्वारा उससे केशव जी के घर जाकर उनका आशीर्वाद लेने का निर्देश दिया। एक पत्र केशव जी को भी लिखा था, जिसमें शरद के जन्मदिन पर उसे अपने घर बुलाकर आशीर्वाद देने का आग्रह किया था। केशव जी ने इस अवसर के लिए रामचरित मानस की एक प्रति लाकर रख ली थी, यह प्रति गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित हुई थी और इसकी टीका प्रसिद्ध मानस विद्वान हनुमान प्रसाद पोद्दार जी ने लिखी थी। केशव जी ने मानस की इस सजिल्द प्रति के पहले पृष्ठ पर लिखा, ''चिरंजीव शरद के अठारहवें जन्म दिन पर सस्नेह भेंट'' इस वाक्य के अंत में उन्होंने अपने हस्ताक्षर किए, किन्तु 'पुनश्च' लिखकर नीचे इस प्रकार लिखा- ''रामचरित मानस महाकवि तुलसीदास का विश्व विख्यात महाकाव्य है, इसमें प्रभु श्री राम के उदात्त जीवन तथा महान आदर्शों का विशद् वर्णन है। इसके नियमित पठन-पाठन और अनुशीलन से व्यक्ति अपने जीवन को भी धन्य और अनुकरणीय बना सकता है।'' इसके पश्चात् भी उन्होंने दुबारा हस्ताक्षर किए। निर्धारित तिथि पर शरद केशव जी के घर पर पहुँचा, वह किंचित लज्जित और संकोचग्रस्त मुद्रा में था, क्योंकि सुधा वाले दुर्भाग्यपूर्ण प्रसंग को वह अभी भी भूल नहीं पाया था। उसने केशव जी और उनकी पत्नी के चरण स्पर्श किए। केशव जी की पत्नी ने उसके माथे पर रोली अक्षत का तिलक लगाया, उसे पुष्प हार पहनाया और मिठाई खिलाई। सभी ने एक साथ भोजन किया। केशव जी ने उसे मानस की वह प्रति आशीर्वाद के रूप में दी। छात्रावास पहुँचकर शरद ने जैसे ही पुस्तीका का पहला पृष्ठ पलटा, तो उस टिप्पणी को पढ़कर वह रोमांचित हो उठा, बहुत देर तक वह केशव जी के शब्दों पर विचार करता रहा और उसके अन्तर्निहित भाव की गम्भीरता को समझते हुए उसने मानस के नियमित पाठ का संकल्प कर लिया। अंततः शरद का डिग्री कोर्स पूरा हो गया और वह अपने घर पहुँच गया तथा शासकीय सेवा के लिए प्रयत्न करने लगा। अपने बड़े भाई राकेश के परिचय और संपर्क सूत्रों के कारण उसे संभागीय आयुक्त कार्यालय में कम्प्यूटर ऑपरेटर की नौकरी मिल गई, जिससे उसे अत्यंत प्रसन्नता हुई। केशव जी के एक मित्र ने शरद को किला बस्ती में एक अच्छा सा घर किराए पर दिलवा दिया, जिसमें सभी आधुनिक सुविधाएँ थीं। संभागीय कार्यालय के पास ही एक भोजनालय में उसने भोजन की व्यावस्था कर ली। सब कुछ ठीक-ठाक चलने लगा।

जिस बस्ती में शरद रहता था, उसमें कुछ व्यापारी परिवार रहते थे। सभी पुरुष अपनी-अपनी दुकानों पर जाते थे और पूरे मोहल्ले में केवल महिलाएँ ही दिन में दिखाई देती थीं। शरद ने अपनी दिनचर्या

व्यवस्थित कर ली थी। प्रातः पाँच बजे उठकर शौचादि के बाद वह घूमने जाता था और लौटकर स्नानादि से निवृत्त होकर नियमित रूप से मानस के एक पारायण का पाठ करता था। तत्पश्चात् दूध लाकर चाय बनाता था और साथ में बिस्किट और नमकीन के अल्पाहार की व्यवस्थाएँ भी कर रखी थीं। इसके पश्चात् वह लगभग दस बजे कार्यालय के लिए निकल पड़ता था। होटल पर भोजन करके कार्यालय पहुँचता और शाम को होटल पर भोजन करके ही घर लौटता था। यह मकान एक ऐसे व्यक्ति का था जो शासकीय सेवा में होने के कारण सपरिवार कहीं दूसरे शहर में रहता था कुछ कमरे उसने अपने पास रखे थे, जिनमें ताले लगे हुए थे। अगला भाग शरद के पास था। कभी-कभी वह शाम को छत पर घूमने चला जाता था। एक दिन ऐसे ही वह छत पर घूम रहा था, तभी उसे एक कागज की पुड़िया दिखी, उठाकर खोला तो वह एक पत्र था, उस पत्र के ऊपर संबोधन के रूप में लिखा था, ''मेरे सपनों के राजकुमार'' सारा पत्र अत्यंत फूहड़ और अश्लील भाषा में लिखा गया था। पत्र पढ़कर शरद कुछ चिंतित और असामान्य स्थिति में पहुँच गया। उसे यहाँ रहना सहज या हितकर प्रतीत नहीं हो रहा था। सुधा वाली घटना को वह भूला नहीं था। केशव जी के मार्गदर्शन में वह अपने आप को एक अच्छा व्यक्ति बनाने की ओर अग्रसर था, किन्तु इस पत्र ने उसे शीघ्रातिशीघ्र इस घर को खाली करने की दिशा में सोचने को बाध्य कर दिया। रात बहुत देर के बाद उसे नींद आ सकी।

अगले दिन तृतीय शनिवार का अवकाश था, अतः वह कुछ देर से उठा। पिछली शाम की घटना रह-रह कर उसे विचलित कर रही थी। अन्यमनस्क भाव से उसने अपनी दिनचर्या आरम्भ की। स्नानादि से निवृत्त होकर मानस का पाठ किया और तैयार होकर भोजनालय की ओर चल दिया। वह बहुत दुविधा की स्थिति में था। उसे लग रहा था कि जिस लड़की ने यह पत्र पहुँचाया है, वह यहीं नहीं रुकेगी। कहीं कुछ अवांछनीय घटित न हो जाए, यह सोचते हुए वह बहुत चिंतित हो रहा था। उसने एक बार यह पत्र केशव जी को दिखाने का विचार किया, किन्तु संकोचवश ऐसा नहीं कर सका। रात्रि को बहुत देर में कमरे पर आया और जैसे ही दरवाजा खोला, तो सामने फिर एक लिफाफा दिखाई दिया, जिसे खोलते ही वही अश्लील शब्दों से भरा हुआ पत्र था। संबोधन के स्थान पर लिखा था, ''मेरे प्राणनाथ, मैं तुम्हें अपने अंक में भरने के लिए के लिए तड़प रही हूँ।'' इत्यादि...। इस पत्र से यह प्रमाणित हो गया कि इसे लिखने वाली जो भी युवती है, वह रुकने वाली नहीं है।

अब शरद ने निश्चय कर लिया कि वह केशव जी को ये दोनों पत्र बताकर उनसे उचित निर्देश लेगा, जिस व्यक्ति ने यह मकान दिलवाया था, वह केशव जी का सुपरिचित था। इसमें रहते हुए एक मास और कुछ दिन व्यतीत हुए थे और दो महीने का एडवांस जमा किया गया था। दूसरे दिन प्रातः तैयार होकर वह स्कूटर से केशव जी के घर पहुँचा। रविवार होने से वे घर पर ही मिल गए। पत्रों को पढ़कर स्थिति की गंभीरता को समझते हुए केशव जी ने शीघ्रातिशीघ्र मकान बदलने का निश्चय किया। उस मध्यस्त व्यक्ति को बुलाकर उसे सारी स्थिति समझाई और एक-दो दिन में मकान खाली करने का निश्चय उसे बता दिया। दिनभर केशव जी और शरद मकान की खोज में घूमते रहे और अंततः शास्त्री नगर में एक अच्छा सा मकान शरद के लिए मिल गया। दूसरे ही दिन किले वाली बस्ती का मकान खाली कर दिया, और शरद एक अवांछनीय और चिंताजनक स्थिति से मुक्त हुआ।

सरकारी सेवा में आने के साथ ही शरद के विवाह के प्रस्ताव आने लगे थे। शरद के स्व. पिताजी के संपर्क और संबंध बहुत व्यापक थे। अत: अनेक लोग उसे देखने उसके कमरे पर आने लगे। अंतत: उसका रिश्ता एक कुलीन और संभ्रान्त परिवार की लड़की के साथ निश्चित हो गया। इन्दु अपने माता-पिता की इकलौती बेटी थी और उसके बड़े भाई शासकीय सेवा में अच्छे पद पर थे। अत: धूम-धाम और हर्षोल्लास के साथ शरद और इन्दुमती का विवाह सम्पन्न हो गया। शरद एक माह का अवकाश लेकर अपने परिवार के साथ रहा और फिर दोनों महानगर में शास्त्री नगर वाले मकान में आकर रहने लगे। शरद की माताजी भी अब इन लोगों के साथ रह रहीं थीं। एक वर्ष होते-होते इन्दु ने एक सुन्दर और स्वस्थ कन्या को जन्म दिया। समूचे परिवार में इस बेटी के जन्म से अत्यंत उत्साह और आनंद का वातावरण निर्मित हुआ। पुत्री का नामकरण भी शास्त्री नगर में सम्पन्न किया गया। कुल पुरोहित ने जन्म लग्नांक के अनुसार पुत्री का नाम 'निधि' रखा जो सभी को बहुत प्रिय लगा। शरद और इन्दु का दाम्पत्य जीवन पुत्री के आने से अत्यधिक आनंद और उल्लास से परिपूर्ण हो गया। इन्दु विज्ञान स्नातक होने के साथ ही शिक्षा में डिप्लोमा भी कर चुकी थी और वह अपने आर्थिक स्वावलम्बन के लिए बहुत उत्सुक थी। इसी बीच शिक्षा विभाग की ओर से वर्ग एक व वर्ग दो के लिए शिक्षकों के चयन का विज्ञापन निकला। सभी योग्यता होने के कारण इन्दु ने वर्ग दो के लिए आवेदन कर दिया और उसका चयन हो गया। केशव जी और शरद के व्यापक सम्पर्क सूत्रों का लाभ इन्दु की नियुक्ति में मिला और उसे महानगर के ही एक कन्या विद्यालय में वर्ग दो में अध्यापिका के पद पर पदांकित कर दिया गया।

इस समय निधि दो वर्ष की हो गई थी। उसे घर पर अपनी सासू माँ के पास छोड़कर इन्दु विद्यालय आती थी। दिन में कई बार बेटी की याद आती थी, किन्तु धीरे-धीरे उसने अपने आप को उस ओर से निश्चिंत करने का अभ्यास कर लिया था। दोपहर का भोजन सभी अध्यापकों को लेकर आती थीं और मध्यान्तर में स्टॉफ रूम में भोजन करती थीं। एक दिन जब अधिकांश अध्यापिकाएँ अपने-अपने डब्बे निकाल कर भोजन की तैयारी कर रही थीं, तभी इन्दु ने अपना मोबाइल निकालकर किसी को फोन करना चाहा, मोबाइल खोलते ही उसकी स्क्रीन पर एक पुरुष का चित्र उभरा, पास में बैठी हुई सुधा वर्मा नामक अध्यासपिका उसे देखते ही उच्च स्वर में बोली, ''अरे! इन्दु बहिन, जरा दिखाना यह किसका चित्र है?'' इन्दु ने अपना मोबाइल उसको दे दिया। अब वह फिर से चीखी ''अरे यह तो शरद का चित्र है। क्या ये आपके श्रीमान हैं?'' इन्दु ने कहा, ''हाँ, पर आपको इन्हें देखकर आश्चर्य क्यों हो रहा है? '' सुधा ने कहा कि इन महाशय को मेरे भाइयों ने सुधारा था। कॉलेज में ये बिल्कुल मजनू बन गए थे। मेरे भाइयों ने इन्हें ऐसा ठीक किया कि अगले दो वर्षों तक इन्होंने किसी लड़की की ओर देखा तक नहीं। बड़े सीधे और सज्जन बन गए थे। इन्दु के पूछने पर उसने और विस्तार से सारी घटना का उल्लेख कर दिया, और यह भी कहा कि इन्दु बहिन, जवानी के दिनों में इस तरह की बातें हो जाती हैं, बुरा मत मानना।

इस पूरे वार्तालाप में सुधा ने अत्यंत अशिष्ट भाषा में व्यंग्य और वक्रोक्तियों का प्रयोग किया, जिनसे इन्दु का हृदय अत्यंत आहत हो गया। उसने अपना भोजन का डब्बा खोला तक नहीं और कैंटीन में चाय पीकर ही अपने मन को स्थिर करने की चेष्टा करती रही। शाम को जब पाँच बजे घर पहुँची, तो निधि दौड़कर उससे लिपट गई। माता और पुत्री दिनभर के विछोह के बाद जब मिलती थीं, तब रोज ही

यह दृश्य उपस्थित होता था, परन्तु आज इन्दु उस उत्साह के साथ निधि के प्यार का उत्तर नहीं दे पा रही थी। सासू माँ ने उदासी का कारण पूछा, तो उसने बताया कि आज दोपहर से ही सिर में दर्द है। वह निधि को लेकर अपने कमरे में चली गई और पलँग पर लेट गई। छः बजे शरद घर आया, तो माँ ने कहा कि आज बहू की तबियत कुछ ठीक नहीं है। इतना सुनते ही वह सीधे अपने कमरे में इन्दु के पास पहुँचा और उसके स्वास्थ के बारे में पूछा, तो इन्दु ने अन्यमनस्क भाव से कह दिया कि कोई बात नहीं है, हल्का सा सिर दर्द है। उसकी बातों में कुछ उदासीनता और हर प्रश्न का उत्तर न देने के कारण शरद को यह समझते देर नहीं हुई कि कुछ न कुछ गड़बड़ अवश्य है। अब उसने जोर देकर पूछा कि बताओ क्या बात है, मैं तब तक यहाँ से नहीं जाऊँगा जब तक मुझे सच्चाई नहीं बताओगी। अब वह क्रोधित मुद्रा में बोली, ''आज आपके कॉलेज जीवन के किस्से सुनकर आई हूँ। आप सुधा वर्मा को जानते हैं न, वह मेरे विद्यालय में अध्यापिका है, जो आपके कॉलेज के समय बी.कॉम. की छात्रा थी। आपको याद आ गया होगा, आपने उसके साथ कैसा व्यवहार किया था और आपको उसका क्या फल मिला?'' अब शरद के सामने सारी स्थिति स्पष्ट हो गई थी। उसने उस पूरी घटना का वृत्तान्त स्पष्ट शब्दों में बिना किसी हेर-फेर के इन्दु के सामने प्रस्तुत कर दिया और कहा, ''सुधा ठीक कहती है। उस घटना के बाद मैंने कभी भी किसी स्त्री के विषय में अनुचित विचार मन में नहीं आने दिया। श्रद्धेय भाईसाहब केशव जी इस पूरी घटना के साक्षी हैं। इसी क्रम में उन्होंने मुझे रामचरित मानस की एक बड़ी पुस्तक दी थी और उसका नियमित पाठ करने का निर्देश दिया था। तब से मैं निरंतर मानस का पाठ करता हूँ और उसके महानायक प्रभु श्रीराम के आदर्शों पर चलने का प्रयत्न कर रहा हूँ।'' इस स्पष्टीकरण ने इन्दु के हृदय को किंचित शान्ति प्रदान करते हुए सामान्य स्थिति में लौटने में सहायता की।

शरद और इन्दु का दाम्पत्य जीवन सहज गति से चल रहा था। निधि उन दोनों के बीच वात्सल्य और ममता के वातावरण को बढ़ाती रहती थी। दोनों शासकीय सेवा में अपने-अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए अपने पारिवारिक जीवन को भी अधिक सुखद और आनंदमय बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। इसी बीच एक अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति निर्मित हो गई। बड़े दिनों के अवकाश के समय इन्दु घर पर ही रहती थी, किन्तु शरद नियमित रूप से कार्यालय जाता था। एक दिन एक युवती इन्दु के घर आई। उसने अपना परिचय देते हुए कहा कि वह निशा दुलानी है, उसका मायका किला बस्ती में है। अब वह आगरा में अपनी ससुराल में है। अभी दो दिन पूर्व ही यहाँ आई है। इस परिचय के साथ ही उसने बताया कि उसका शरद के साथ बहुत लम्बे समय तक प्रेम संबंध रहा है। शरद उसके घर के पास ही रहते थे और आते-जाते उसे छेड़ते रहते थे। अपनी अज्ञानता के कारण मैं भी उनकी ओर आकर्षित हो गई। शरद ने विवाह का वचन देकर शारीरिक संबंध भी बना लिए थे, किन्तु एक दिन चुपचाप उस बस्ती का मकान खाली कर यहाँ आ गए। मैं बहुत दिनों तक परेशान रही। घर वालों ने मेरा विवाह आगरा कर दिया। निशा ने इन्दु को सावधान करते हुए कहा कि शरद बहुत मनचले और दुर्बल चरित्र के व्यक्ति हैं। तुम्हें ऐसे पति से सावधान रहने की आवश्यकता है। इतना सबकुछ कहकर निशा वहाँ से चली गई।

इन्दु के लिए यह वज्राघात जैसा था। वह एक प्रकार से अवसाद की स्थिति में पहुँच गई। उसने शरद से बातचीत करना भी बन्द कर दिया। उसका मन यहाँ से शीघ्रातिशीघ्र निकल जाने का हो रहा था। शरद भी

बहुत परेशान था, बार-बार पूछने पर इन्दु ने केवल इतना बताया कि किला बस्ती की निशा से आपके क्या संबंध रहे हैं, इसका पूरा विवरण मुझे मिल गया है। शरद ने बार-बार यह कहा कि वह किसी निशा को नहीं जानता। वह किला बस्ती में बहुत कम समय के लिए रहा था। वहाँ का वातावरण बहुत ही भयानक था और वहाँ कोई भी भला व्यक्ति नहीं रह सकता था। मेरे कमरे में प्रतिदिन चिट्ठियाँ फेंकी जाती थीं, जिनमें अत्यंत अश्लील और भद्दे शब्दों में प्रणय याचना की जाती थी। मैंने वे चिट्ठियाँ भाईसाहब केशव जी को दिखाईं और उन्होंने तत्काल मुझे वहाँ से हटाकर शास्त्री नगर में यह मकान दिलवा दिया। यह वृत्तान्त तुम्हें जिस महिला ने सुनाया है, हो सकता है वही उस दुष्कर्म के पीछे रही हो, परन्तु मैंने उसे कभी देखा तक नहीं है। शरद के इस स्पष्टीकरण पर इन्दु ने विश्वास नहीं किया, सुधा वाला प्रकरण भी उसके मस्तिष्क में था। समग्र में, उसका विश्वास दृढ़ होता जा रहा था कि शरद एक दुर्बल चरित्र का व्यक्ति है और हो सकता है कि निशा ने जो कुछ कहा है, उसमें वास्तविकता हो। अब उसने शरद से अलग रह कर जीवन व्यवतीत करने का संकल्प कर लिया। विद्यालय से अवकाश लेकर वह एक सप्ताह के लिए अपने मायके चली गई और वहाँ अपने भाई तथा माँ को शरद के आचरण से संबंधित सभी बातें विस्तार से बताईं। उसने अपना यह निश्चय भी व्यक्त कर दिया कि अब वह शरद के साथ नहीं रह सकती। उसने अपने भाई और माँ को भी इसके लिए सहमत कर लिया। एक ही नगर में शासकीय सेवा होने के कारण इन्दु ने एक दूरस्थ बस्ती में अपने एक रिश्तेदार के मकान में ही किराये से घर ले लिया। यह घर उसके बड़े भाई ने ही दिलवाया था। शरद के बहुत अनुनय-विनय करने के बाद भी उसका मन नहीं पसीजा और अपना सारा सामान लेकर निधि के साथ उस नए घर में रहने चली गई। अपने साथ अपनी माँ को भी वह ले आई थी।

इन्दु के अलग हो जाने से शरद और उसका परिवार बहुत व्यथित हो गया था। सर्वथा निर्मूल धारणा को आधार बनाकर इन्दु ने घर छोड़ा था, यही सोचकर सभी लोग दु:खी थे। वरिष्ठ परिजनों ने उसे समझाने और विवाह संबंध को टूटने से बचाने के लिए बहुत प्रयत्न किए, किन्तु इन्दु टस से मस नहीं हुई। अंतत: शरद ने इसे अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लिया और भगवान पर आस्था रखते हुए अकेले ही जीवन यात्रा पूरी करने का संकल्प कर लिया। निधि से मिलने को उसका मन बहुत होता था, किन्तु इन्दु ने घर से निकलते समय उससे यह वचन ले लिया था कि वह निधि से मिलने का प्रयत्न नहीं करेगा। समय बीतता गया, निधि बड़ी होकर हायर सेकेण्डरी स्कूल जाने लगी और एक दिन उसने 12वीं की परीक्षा में प्रावीण्य सूची में प्रदेश में दूसरा स्थान प्राप्त किया। सभी समाचार पत्रों में उसके चित्र के साथ जो परिचय छापा गया था, उसमें शरद दुबे का नाम उसके पिता के रूप में अंकित था, यह अवसर शरद के लिए सर्वाधिक भावुकतापूर्ण था। उसने मन ही मन गर्व का अनुभव किया और भगवान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मंदिर में जाकर मिठाई का वितरण किया। अब उसकी बेटी अगले शिक्षा सत्र से कॉलेज में प्रवेश लेगी। वह कल्पना कर रहा था कि वह खूब बड़ी हो गई होगी। वह कैसी दिखती होगी, यह सोचते हुए उसने एक प्रकार से संकल्प किया कि उसके अगले जन्मदिन पर वह अवश्य ही उसके कॉलेज में जाकर उससे मिलेगा। वह लगातार इस बात की सूचना प्राप्त करता रहा कि निधि किस कॉलेज में तथा किय संकाय में प्रवेश लेगी। केशव जी के माध्यम से उसे यह सूचना मिल गई थी कि निधि ने शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय में विज्ञान विषय लेकर प्रथम वर्ष में प्रवेश ले लिया है।

25 अगस्त को निधि का अठारहवाँ जन्मदिन था। संयोग से इस दिन द्वितीय शनिवार का अवकाश भी था। सुबह अपने दैनिक कार्यक्रम और पूजा पाठ से निवृत्त होकर शरद कन्या महाविद्यालय के लिए निकल पड़ा। चलते समय उसने एक पुराना एलबम भी अपने बैग में रख लिया और ब्रजवासी मिष्ठान भण्डार से काजू की बर्फी का एक डिब्बा भी ले लिया। कॉलेज की प्राचार्या के कक्ष में पहुँचकर उसने अपना परिचय दिया और प्रथम वर्ष की विज्ञान संकाय की छात्रा निधि दुबे का पिता बताते हुए उससे मिलाने का अनुरोध किया। उसने यह भी बताया कि उसकी पत्नी इन्दु दुबे बहुत पहले उससे अलग हो गई थी और निधि उसी के साथ रहती है। प्राचार्या के पूछने पर उसने इस अलगाव का विस्तार से विवरण दिया, और स्पष्ट रूप से अपने आप को सर्वथा निर्दोष बताते हुए इस अलगाव का कारण इन्दु का अहं और हठवादिता को बताया। उसने यह भी बताया कि इन्दु अध्यापिका है, जिस पर समाज को शिक्षित करने का दायित्व है, किन्तु वह स्वयं इस तथ्य से अवगत नहीं है। प्राचार्या ने शरद के स्पष्टीकरण को बिल्कुल सत्य, माना और इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के लिए इन्दु को ही उत्तरदायी माना। निधि को कक्षा से बुलाने का आग्रह करते हुए शरद ने कहा कि आज उसका अठारहवाँ जन्मदिन है, मैं उसे अपने हाथ से मिठाई खिलाना चाहता हूँ। यदि वह मुझे नहीं पहचानेगी तो मेरे पास एलबम है, जिसमें मेरे और इन्दु के साथ निधि के बचपन के कई चित्र हैं।

प्राचार्या ने निधि को कक्षा से बुलवाया। उसने आते ही नमस्कार किया। प्राचार्या ने उसे कुर्सी पर बैठने को कहा और पूछा, ''निधि, देखो ये कौन हैं? '' निधि ने ध्यान से देखा और एक क्षण बाद ही चेहरे पर मुस्कान लाते हुए बोली, ''ये मेरे पापाजी हैं।'' प्राचार्या ने पूछा कि तुम इन्हें कैसे पहचानती हो, तो उसने कहा कि मम्मी के पास उनके विवाह का एलबम है, जिसमें पापाजी के बहुत सारे चित्र हैं, मैं प्राय: उस एलबम को देखती रहती हूँ। कक्ष में तीनों प्राणी बड़े ध्यान से एक दूसरे को देख रहे थे। शरद ने अपना एलबम निकाल कर निधि को दिखाया, जिसके सभी चित्रों को उसने बहुत शीघ्र ही पहचान लिया। अब किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं थी। शरद ने अपने बैग में से मिष्ठान का डिब्बा निकाला और उसमें से एक पीस हाथ में लेकर निधि को अपने पास बुलाया और कहा, ''आओ बेटे! आज तुम्हारा अठारहवाँ जन्मदिन है, मेरे हाथ से मिठाई खाओ।'' इतना कहते-कहते उसकी आँखों में आँसुओं का प्रवाह बाहर निकल पड़ा। निधि दौड़कर अपने पिता से लिपट गई और उनके हाथ से मिठाई खाई। वह स्वयं भी बहुत भावुक हो गई थी। कई क्षणों तक इस करुण दृश्य को प्राचार्या देखती रही और उसकी आँखें भी अश्रु विगलित हो गई थीं। शरद ने मिष्ठान से भरा हुआ वह डिब्बा प्राचार्या को देते हुए मिठाई को स्टॉफ में वितरित करने का अनुरोध किया।

प्राचार्या ने निधि से कहा कि वह जाते समय मेरा एक पत्र लेती जाए, जिसे अपनी माँ को देना है। निधि के जाने के पश्चात् प्राचार्या ने अपने व्यक्तिगत पैड पर इन्दु को पत्र लिखा, जिसमें उसने कहा कि आज तुम्हारी पुत्री निधि के पिता श्री शरद दुबे मेरे कक्ष में आये थे। आज निधि का अठारहवाँ जन्मदिन था। उससे मिलने और अपने हाथ से मिठाई खिलाने के लिए उन्होंने मुझसे अनुरोध किया था, जिसे मैंने स्वीकार कर लिया। शरद जी एक अत्यंत भावुक, संवेदनशील और धर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है। वे एक बहुत अच्छे पिता भी हैं। इस अवसर पर उन्होंने जो स्पष्टीकरण दिया, इससे मुझे पूरा

विश्वास हो गया कि वे सर्वथा निर्दोष हैं, किन्तु आपने कुछ निराधार और सर्वथा अप्रमाणित बातों के आधार पर अपना अलग मार्ग चुन लिया, यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। आप भी अध्यापिका हैं। अत: एक समानधर्मा के नाते मैं आपको यह परामर्श देना अपना कर्तव्य समझती हूँ कि आप इस अहमन्यता और हठवादिता से बाहर निकलें तथा अपने दाम्पत्य जीवन को नये सिरे से आरंभ करें। हमारे पूर्वज कहते आये हैं कि 'जब जागो तभी सबेरा'। आशा है, आप अपने, अपनी बेटी और पति के शेष जीवन को सुखद बनाने के लिए मेरे इस परामर्श पर गम्भीरता से विचार करेंगी।

निधि ने वह पत्र अपनी माँ को ले जाकर दिया, जिसे पढ़कर इन्दु आज पहली बार बहुत भावुक हो गई। उसने कई-कई बार इस पत्र को पढ़ा, उसे लगा कि कहीं उसके मन की दुर्बलता प्रकट होती जा रही है। अत: उसने पत्र को लिफाफे में रखकर अपनी अल्मारी में रख लिया और निधि से उस दिन की सारी बातें विस्ताार से जानीं। निधि आज अपनी माँ से अपने पिता के साथ समझौता करने और उनके साथ रहने का आग्रह करती रही, किन्तु इन्दु कुछ नहीं बोली और बेटी को भोजन कराने लगी। तीन वर्ष निकल गये और निधि की विज्ञान स्नातक की पढ़ाई पूरी हो गई। इस बीच उसके मामा और नानी ने इन्दु से निधि का विवाह करने की बात कही और इस दिशा में प्रयत्न भी शुरू कर दिये। एक सुयोग्य लड़का भी मिल गया। उसके माता-पिता तथा अन्य परिजनों से चर्चा कर उन्हें विवाह के लिये तैयार कर लिया। कुछ आरंभिक शगुन भी कर लिये गये। विवाह की लग्न का शोधन करने के लिए पंडित जी बुलाये गये। पंडित जी को इन्दु के पति से अलग रहने की जानकारी थी। अत: उन्होंने सहज ही पूछा कि कन्यादान कौन करेगा? इन्दु ने उत्तर दिया कि मैं करूँगी। पंडित जी ने फिर कहा कि पुत्री का कन्या दान माता-पिता दोनों के द्वारा ही होता है। पति-पत्नि ग्रंथिबद्ध होकर कन्यादान करते हैं, यह शास्त्र का निर्देश है। इस पर इन्दु ने उत्तर दिया कि मैंने अकेले ही अपनी बेटी का पालन-पोषण किया है और उसे उच्च शिक्षा दिलवाई है। अत: मुझे उसका कन्यादान करने का पूरा अधिकार होना चाहिए। उसके उत्तर से पंडित जी कुछ अप्रसन्न हो गये और उन्होंने स्पष्ट कहा कि मैं ऐसा पाणिग्रहण संस्कार नहीं करा सकता। इस पूरे वार्तालाप को निधि ने बड़े ध्यान से सुना और मन ही मन एक निश्चय कर लिया। उसने अपनी माँ से कहा कि मेरे विवाह में पापा जी का सम्मिलित होना अनिवार्य है। आप दोनों गाँठ जोड़कर कन्यादान के लिये राजी होंगे, तभी मैं विवाह कराऊँगी। यदि आप एक गलत धारणा को लेकर पिछले अठारह वर्षों से अपने पति से अलग रह सकती हैं तो मैं भी अपने पिता की अनुपस्थिति में अपना विवाह नहीं करा सकती, चाहे मुझे जीवनभर कुमारी ही क्यों न रहना पड़े। निधि के इस निर्णय ने इन्दु के सभी रिश्तेदारों और इष्ट मित्रों को इस विषय में सोचने को बाध्य कर दिया। अंतत: शरद और उसके समस्त परिवार को विवाह में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया गया। सभी अत्यंत आनंद के साथ कार्यक्रम में सम्मिलित हुये। इन्दु और शरद दोनों ने ग्रंथिबद्ध होकर अपनी पुत्री का कन्यादान किया। विदा के समय निधि अपने माता-पिता से लिपटकर बहुत रोई। वे दोनों भी फूट-फूट कर रोते रहे। आँसुओं की इस प्रबल बाढ़ में पिछले अठारह वर्षों से जमी हुई अहमन्यता, हठधर्मिता और मिथ्याधारणाओं की परतें उखड़कर बह गईं।

सम्पर्क : शिवपुरी (म.प्र.)

मीरा जैन

पेड़ का जवाब

हवा प्रतिदिन अपने रास्ते में आने वाले सभी पेड़-पौधों को समान रूप से छूती हुई आगे बढ़ जाती। इस दौरान एक सबसे ऊँचे पेड़ से उसकी दोस्ती हो गयी। रोज की तरह हवा बहती हुई कुछ देर के लिए अपने मन में उठने वाले प्रश्न का जवाब पाने के लिए उस पेड़ के पास रुक गई। थोड़ी इधर-उधर की बातें करने के पश्चात् अपने मन की शंका कुछ यूँ प्रगट की-

'पेड़ भाइ! एक बात मेरी समझ में नहीं आती है। तुम सबसे बड़े इतनी ऊँचाई पर होने के बावजूद मैं जब भी यहाँ से थोड़ी भी तेजी से गुजरती हूँ तो तुम सबसे पहले झुकते हो, नीचे वाले नहीं जबकि झुकना तो पहले उन्हें चाहिये?' इस पर पेड़ के सबसे ऊपर वाली शाखा ने बहुत ही सुंदर जवाब दिया-

'बहन हवा! आज मैं जो कुछ हूँ अपने नीचे वालों की बदौलत ही हूँ और इस ऊँचाई पर बने रहने के लिये झुकना बहुत जरूरी है। इतना ही नहीं मेरे इस झुकने से नीचे वालों को एहसास होता है कि उनके लिए मैं अपने प्राणों की बाजी भी लगा सकता हूँ। इसीलिये उन्होंने मुझे सबसे ऊँचा स्थान दिया है।'

'सत्तर में सम्मान'

सत्तर की उम्र पार कर चुके राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त रामपाल जी का नाम देश के ख्यात समाज-सेवियों में शामिल था। उनका नाम सुनते ही शहरवासियों का सीना गर्व से तन जाता। इसी तारतम्य में उनके सम्मान में नगर की नामी नवयुवक संस्था ने एक भव्य कार्यक्रम आयोजित किया। कार्यक्रम के दौरान मंचासीन रामपाल जी का फूल माला, शाल, श्रीफल से स्वागत करने के पश्चात् समस्त पदाधिकारियों ने उनकी प्रशंसा के कसीदे गढ़ते हुए सामान्य रूप से एक बात सभी ने कही-

'आदरणीय रामपाल जी हमारे पूज्य ही नहीं अपितु हमारे परिवार का अभिन्न अंग हैं।'

अंत में रामपाल जी ने सभी का आभार व्यक्त करते हुए अन्य औपचारिकताओं के पश्चात् कहा कि- 'मेरे प्रिय बच्चों! तुम लोगों ने मुझे अपने परिवार का मेम्बर माना। इससे बड़ा सम्मान मेरे लिए कोई दूसरा हो ही नहीं सकता है।' इतना सुनते ही सारा हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। लेकिन अगले ही पल हाल में सन्नाटा पसर गया जब रामपाल जी ने रुँधे गले और नम आँखों से कहा 'विवेक शील युवाओ! एक मेहरबानी मुझ पर और कर दो जिस तरह आप लोगों ने मुझे अपने परिवार का मेम्बर माना उसी तरह अपने घर के बुजुर्गों को भी अपने परिवार का सदस्य मानें...।'

संपर्क : उज्जैन (म.प्र.)

प्रो. जगदीश खरे

गुरु दक्षिणा

'पापा... मैं आपसे रूठी हुई हूँ। आप मुझे मना क्यों नहीं रहे हैं?' आद्या रुँआसी हो उठी...

डॉ. सत्य प्रकाश संस्कृत के विभागाध्यक्ष हैं। राजधानी के प्रख्यात वि.वि. में उन्होंने तुरंत बच्ची को गोद में उठा लिया और कहा-'बता प्यारी बेटी पापा से क्यों रूठी है?'

पूरी कॉलोनी के बच्चों को, उनके पापा चमचमाती कारों से स्कूल छोड़ने जाते हैं मेरी सहेलियाँ मजाक उड़ाती है, 'तुम्हारे पापा साइकिल से.... हैंडिल में फँसी डोलची...'

'पापा आप भी कार, खरीद लीजिए, नहीं तो मैं आपसे बात नहीं करूँगी।'

माँ हँसने लगीं-

'डॉ. साहब, अब छोड़िये ये डोलची लगी साइकिल आज ही बच्ची की इच्छा पूरी कीजिए।'

डॉ. मिश्रा के बंगले के पोर्च में सफेद रंग की 'आलटो' खड़ी हो ही गई।

डॉ. मिश्रा को इस बात की हार्दिक प्रसन्नता हुई कि कार विक्रेता बत्रा उन्हें भूला नहीं था।

कौन पूछता है, दसियों साल पुराने शिक्षक को। आव-भगत अलग से। मिश्रा जी सोचने लगे, कि संसार के तमाम रिश्तों में गुरु-शिष्य का रिश्ता सबसे संवेदनशील है। शिष्य, भूल नहीं सकता, बधाईयाँ स्वीकारते देर तो हो गई लेकिन पत्नी ने कहा बड़े हनुमान जी के मंदिर चलते हैं।

पूजा पाठ में सवा दस बज चुके थे। वे पुलकित, हर्षित लौटने लगे। पुल पर अचानक पुलिस की सीटी बजी। 4-6 पुलिस वाले ने गाड़ी घेर ली।

एक पुलिस वाले ने गाड़ी से प्रसाद का पैकट उठाकर अपने साथियों में बाँट दिया और मिश्रा जी की गाड़ी जब्त कर ली। मिश्रा जी ने गाड़ी के सारे कागजात दिखाये, लेकिन उनकी नहीं सुनी। पुलिस ने हुकुम दिया, 'अब आप घर जाइये गाड़ी कल मिलेगी।'

पूरा परिवार हक्का-बक्का रह गया। आद्या रोने लगी। वे गाड़ी लेकर चले गये। जब सारे कागजात हैं तब गाड़ी का चालान क्यों? आद्या बिलख रही थी मिश्रा जी ने सबको धैर्य बँधाया।

'तुम लोग चिन्ता मत करो। गाड़ी कहीं नहीं जा सकती। मेरा शिष्य है- पुलिस मंत्री/चलो उसी के बँगले पर चलते हैं। दूर तक कोई टैम्पो नहीं दिखा। मजबूर होकर सब पैदल चले और एक घंटे में पुलिस मंत्री के बंगले के सामने पहुँच गये।

चिट! भिजवाई....

पुलिस के कई जवान वर्दियाँ उतार कर ताश पत्ती खेल-खेल रहे थे। मिश्रा जी की आल्टो गैरेज में फूलों से लदी खड़ी थी। पर्ची पाते ही पुलिस मंत्री बाहर आये। चरण छुए। 'कैसे सर! इत्ती अंबर! सब खैरियत तो है?' खैरियत तो वो खड़ी है आपके पोर्च में 'आज ही गाड़ी ली हनुमान मंदिर में पूजा अर्चना में देर लग गई।'

'पूरे कागजात होने पर भी.....मिश्रा जी का कंठ विगलित हो उठा।

मंत्री जी का पारा गर्म -'अरे ससुरो! तुम्हें हमारे सर ही मिले थे।'

'आओ चरण छुओ। पोर्च से गाड़ी निकालो' कुछ ने पाँव छुए।

पुलिस मंत्री शिष्य ने क्षमा माँगते हुए कहा, कि गुरुजी ये अपढ़ कुपढ़ हैं रात-दिन ड्यूटी करते हैं इन्हें मिलता ही क्या है? मंत्री ने कहा कि ये रात-दिन के सेवक हैं सो इन्हें आप दस हजार रुपये दे दीजिए।'

और वह लम्बा कुर्त्ता हिलाते भीतर चले गये।

सम्पर्क : सुलतानपुर (उ.प्र.)

कैलाशचन्द्र पंत

कोरोना केंद्रित विश्व और भारत

प्रोफ़ेसर रामदेव भारद्वाज राजनीति शास्त्र के गहरे अध्येता होने के साथ विदेश नीति और राष्ट्रों के बीच पारस्परिक रिश्तों के विश्लेषक भी हैं। इस क्षेत्र में उनके अध्ययनपूर्ण ज्ञान की अभिव्यक्ति सद्य प्रकाशित निबंध संग्रह 'कोरोना केंद्रित विश्व और भारत' में देखी जा सकती है। कोरोना काल की तालाबंदी ने डॉ. भारद्वाज को लेखन का अवसर जुटा दिया। यह पुस्तक हिंदी में ज्ञान विषयक वाङ्मय की अभिवृद्धि करती है, राजनीति के अध्ययनकर्ताओं को राष्ट्रों के पारस्परिक संबंधों के जटिल सूत्रों को समझने की पर्याप्त सामग्री भी उपलब्ध कराती है। लेखक ने इस पुस्तक को तीन अवधारणाओं पर केंद्रित किया है-कोरोना केंद्रित विश्व, चीन केंद्रित अर्थव्यवस्था, आत्मनिर्भर भारत की विश्व राजनीति में भूमिका। ये विषय आज के विश्व में सामयिक और प्रासंगिक हैं।

सामान्य नागरिक भी यह तो समझ चुका है कि कोरोना महामारी ने पूरे विश्व को चपेट में ले लिया है। वह यह भी जान चुका है कि इससे जीवन के सभी क्षेत्र प्रभावित हो रहे हैं। लेकिन लेखक ने शोधपूर्ण ढंग से कोविड-19 के विषैले प्रभाव का, उसकी उत्पत्ति से लेकर जीवन पर हो रहे प्रहार का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया है। राजनीति शास्त्र के विद्वान ने वैज्ञानिक तथ्यों को प्रस्तुत करने का अद्भुत प्रयास किया है तथा भविष्य में इस खतरे के बढ़ने की संभावना के प्रति सचेत भी किया है। स्पष्ट है कि गहरे अध्ययन और शोध के बाद ही ऐसा विश्लेषण संभव हो पाया होगा। हिंदी में ऐसी सामग्री प्रस्तुत कर प्रो. भारद्वाज ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। विश्व के विभिन्न देशों की प्रतिक्रिया, चीन के प्रति बढ़ते आक्रोश और आर्थिक मामलों में चीन पर निर्भरता के कारणों की तलाश के साथ ही संकट का सामना करने के लिए भारत के संकल्पों का यथार्थवादी विश्लेषण करने में लेखकीय तटस्थता का परिचय इन निबंधों को ज्यादा महत्त्वपूर्ण बनाते हैं।

डॉ. भारद्वाज ने भारतीय संस्कृति के स्वास्थ्य-सूत्रों, योग, प्राणायाम और चिकित्सा प्रणाली की महत्ता को स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास भी किया है। पुस्तक में संकलित निबंधों का क्रम इस प्रकार रखा गया है कि पाठकों के समक्ष वर्तमान संकट की पृष्ठभूमि में ऐतिहासिक घटनाओं का भी पता चल जाता है।

पुस्तक : कोरोना केंद्रित विश्व और भारत। लेखक : रामदेव भारद्वाज।
प्रकाशन : इंदिरा पब्लिशिंग हाउस, भोपाल (म.प्र.)
मूल्य : रुपये 350 /-

अधिक से अधिक शक्ति का संग्रह करने की राष्ट्रों की प्रवृत्ति के संहारक रूप को बदलते जाने का विवेचन भी उन अवधारणाओं और विचारधाराओं को सामने ले आता है जो मानव के समक्ष उपस्थित अस्तित्व के संकट के बुनियादी कारणों को समझने की क्षमता प्रदान करता है। लेखक का निष्कर्ष है कि एकाधिकारवादी प्रवृत्ति और नीत्से की 'लास्ट मैन' की धारणा से राष्ट्रों को मुक्त होना आवश्यक है। इसके विपरीत वे चेतना के विकास के लिए बताए श्री अरविंद के दर्शन को प्रतिष्ठापित करते हैं। सावधानी बरतने का परामर्श देते हुए लिखते हैं 'स्वयं को शक्तिशाली बनाना और अंदर से परिपूर्ण करना एक विकल्प है।'

कोरोना महामारी ने पूरी मानवता के अस्तित्व को ही चुनौती दी है। यह सोचने को विवश किया कि भविष्य की विश्व व्यवस्था कैसी हो? इन प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करते हुए लेखक ने मोदी मॉडल का विश्लेषण किया है। इससे पाठकों को विश्व व्यवस्था के संदर्भ में भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की योजना समझने का अवसर उपलब्ध होता है साथ ही उन जटिलताओं की समझ भी पैदा होगी जो अंतर्राष्ट्रीय सहमति बनने में उपस्थित कठिनाइयों को जन्म दे रही हैं। प्रो. भारद्वाज ने इस आशंका की ओर संकेत करते हुए लिखा है-'इस संकट का सामना राष्ट्रवादी अलगाव से करेंगे या फिर वैश्विक साझेदारी और एकजुटता प्रदर्शित करते हुए करेंगे?'

कोरोना का दुष्प्रभाव मानसिकता पर भी पड़ रहा है। चिकित्सक और समाज विज्ञानी आजकल इस विषय पर काफी चिंता प्रकट कर रहे हैं लेकिन प्रो. भारद्वाज इस विषय पर काफी पहले से चिंतन करते हुए लिख रहे हैं-'विषम परिस्थितियों में धन, दौलत, मान, सम्मान, प्रतिष्ठा, भौतिक संसाधन, वैज्ञानिक उपलब्धियाँ और अनेक लौकिक शक्ति संपन्नता, भौतिक ऐश्वर्य कुछ काम नहीं आता। सिर्फ मन की शक्ति, आत्मबल और सकारात्मक मनोविज्ञान ही काम आता है। ...मानसिक शक्ति का आधार आध्यात्मिक बल, बौद्धिक बल, नैतिक बल, शारीरिक बल है जो महत्त्वपूर्ण है। संसार की समस्त उपलब्धियाँ मन की इन्हीं शक्तियों के कारण प्राप्त हुई हैं और इन शक्तियों का स्रोत है संकल्प शक्ति तथा जीवन में स्थिरता और निश्चिंतता का कारक है बुद्धि।'

प्रो. रामदेव भारद्वाज की यह पुस्तक कोरोना से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर विवेचना करती है जो पाठकों को महत्त्वपूर्ण सूचना देने वाली है। अत: पुस्तक सभी क्षेत्रों और वर्गों के पाठकों के लिए महत्त्वपूर्ण है। जहाँ विदेशी संबंधों की पेचीदगियों को प्रस्तुत किया गया है वहीं आर्थिक क्षेत्र में सरकार द्वारा उठाए जा रहे कदमों का विवेचन भी किया गया है।

हिंदी वाङ्मय में इस पुस्तक द्वारा जो वृद्धि की गई है उसके लिए लेखक को बधाई।

संपर्क : भोपाल (म.प्र.)

आज 'साक्षात्कार' पढ़ने का अवसर मिला। आपका सम्पादकीय पढ़ा, उत्सुकता जागी। यही लक्ष्य होता है कि पढ़ें। कुछ अंश पढ़ा, अचानक नजर कार्टून पर पड़ी, वाह! मजा आ गया। यह 'साक्षात्कार' में संभवत: नवाचार है, यदि हाँ तो बधाई! अद्‌भुत। यदि नहीं तो पहली बार प्रभावित किया। पूरे पन्ने पलटने का लोभ संवरण नहीं कर पाई। बहुत दिनों बाद मजा आया, पढ़ने में पढ़ाने में, परन्तु सच्ची टिप्पणी देख कर- साहित्य की, भाषा की दुर्दशा देखकर दु:ख भी हुआ। ऐसी सही पिक्चर दिखाने के लिये धन्यवाद। बधाई! शुभकामनाएँ!-**रेनू तिवारी।**

साक्षात्कार का जुलाई 2020 का अंक मिला आपके सौजन्य से इस आत्मीयता के लिये मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। मैं इंदौर के होलकर विज्ञान महाविद्यालय में गणित का प्राध्यापक था। 2006 में सेवानिवृत्त हुआ। साहित्य में एक पाठक के रूप में मेरी सक्रिय रुचि है। मैं अपनी शुभकामनायें देता हूँ। आपके सम्पादकीय प्रभार में 'साक्षात्कार' श्रेष्ठ साहित्यिक मूल्यों को स्थापित कर अपनी एक पहचान बनाये।-**महेश दुबे, इंदौर।**

सम्पादक साक्षात्कार व साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, आपने बहुप्रतीक्षित साक्षात्कार को साहित्य अंतरंग में एक बार पुन: बेहत खूबसूरत मढ़कर हम तक पहुँचा दिया है। कोरोना समय पूर्व कुछ माह तक साक्षात्कार व उसमें रचे बसे साहित्य प्रबुद्ध पाठक मित्रों ने बहुत कुछ अप्रिय सहा है। आज जब नये लेखकों के लेख, कहानी, कविता, समीक्षा के लिए साक्षात्कार अंक 481 प्रात: ही प्राप्त हुआ है। मन हर्षोउल्लास से भर उठा है। ये साक्षात् सरस्वती की प्रगटोत्सव सा एहसास होता पल है। साक्षात्कार इसी मूर्तरूप में पढ़ने को मिलती रहेगी।-**आनंद प्रकाश शर्मा, पिपरिया।**

साक्षात्कार का अंक जुलाई 2020 की पत्रिका प्राप्त हुई। पूरी पत्रिका का अवलोकन किया, सम्पूर्ण साहित्य पठनीय, प्रशंसनीय तथा छात्रोपयोगी है। संपादकीय उत्तम है। डॉ. राजेन्द्र कुमार सिंघवी जी का 'हिन्दी आलोचना का वर्तमान : भाषा, प्रतिमान एवं विचारधारा' में व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। 'हिन्दी की विश्वव्यापकता' ने अपनी सरलता और सुगमता के कारण अपनी पहचान बनायी है। संदीप सृजन का लेख 'हिन्दी साहित्य के इतिहास में तालाबंदी काल' मतलब लॉकडाउन काल स्वर्णिम काल रहा। बहुत कुछ सच है।-**बी.एस. शांताबाई, बेंगलूर।**

साक्षात्कार का अंक जुलाई 2020 प्राप्त हुआ। सहृदय आभार, लम्बे अंतराल के पश्चात् पत्रिका को पढ़ना सुखद लगा अंक हमेशा की तरह स्तरीय सामग्री से भरापूरा है। संपादकीय में आपका साफ-साफ कहना यह आपकी सरलता, अहं से परे है/ संपादक और रचनाकारों के बीच सीधा संवाद स्थापित करना, स्वागत योग्य है। निश्चित ही पत्रिका और नये रूप में पढ़ने को मिलेगी, संकल्प को बधाई। अंक में आलेख, साक्षात्कार, कविता, दोहे आदि ठीक लगे तथा व्यंग्य चित्र भी अच्छे हैं, प्रकाशित करते रहिएगा।-**शिव डोयले, विदिशा।**

आपकी संपादकीय से सजी-सँवरी साक्षात्कार का अगस्त अंक 2020 हमें प्राप्त हुआ। आपका दिल से आभार प्रकट करता हूँ। डॉ. शुकुन्तला कालरा से आपकी बातचीत कहानियाँ, कविताएँ हमें पसंद आईं। विश्वास है साक्षात्कार के सभी अंक हमें पढ़ने को मिलेंगे।-**बद्रीप्रसाद वर्मा अनजान, गोरखपुर (उ.प्र.)।**